BAMI(N)-302

भारतीय संगीत शास्त्र–
स्वरवाद्य एवं प्रयोगात्मक षष्ठम सेमेस्टर

संगीत– स्वरवाद्य में स्नातक (बी0ए0)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMI(N)-302

भारतीय संगीत शास्त्र–स्वरवाद्य एवं प्रयोगात्मक
संगीत– स्वरवाद्य में स्नातक (बी0ए0)– षष्ठम सेमेस्टर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी – 263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन समिति

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

संयोजक
निदेशक
मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 पंकजमाला शर्मा(स.)
पूर्व विभागाध्यक्ष–संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ0 विजय कृष्ण(स.)
पूर्व विभागाध्यक्ष–संगीत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी(स.)
संगीत विभाग,
इग्नू, दिल्ली

श्री प्रदीप कुमार(स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 जगमोहन परगांई(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन

श्री प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

श्री प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन

1.	**डॉ0 महेश पांडे**	इकाई 1,2,3,5
2.	**श्री सतीश श्रीवास्तव**	इकाई 4
6.	**डॉ० विजय कृष्ण**	इकाई 6

कापीराइट	: @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण	: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष	: जनवरी 2026
प्रकाशक	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल	: books@uou.ac.in

नोट – इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्च न्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

BAMI(N)-302

भारतीय संगीत शास्त्र–स्वरवाद्य एवं प्रयोगात्मक संगीत– स्वरवाद्य में स्नातक(बी0ए0)– षष्ठम सेमेस्टर

इकाई 1– भारतीय संगीत का इतिहास – आधुनिक काल ।	**पृष्ठ 1–8**
इकाई 2– इकाई 2– श्रुति एवं स्वर की व्याख्या प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार।	**पृष्ठ 9–26**
इकाई 3– दक्षिण भारतीय संगीत का परिचय ।	**पृष्ठ 27–34**
इकाई 4– स्वर वाद्य में तन्त्रकारी एवं गायन शैली ।	**पृष्ठ 35–45**
इकाई 5– पाठ्यक्रम के रागों दरबारी, बसन्त, परज एवं शंकरा का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना तथा उनमें मसीतखानी/विलम्बित गत एवं रजाखानी/द्रुत गत को तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना।	**पृष्ठ 46–69**
इकाई 6– पाठयक्रम की तालों पंचम सवारी एवं 9 मात्रा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना य पाठयक्रम की तालों पंचम सवारी एवं 9 मात्रा ताल के ठेके को दुगुन, तिगुन, चौगुन एवं आड़ लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।	**पृष्ठ 70–77**

इकाई 1 – भारतीय संगीत का इतिहास – आधुनिक काल

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आधुनिक काल
1.3.1 संगीत विकास के कार्य
1.3.2 वर्तमान शिक्षा का स्वरूप
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (BAMI(N)-302) की पहली इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप बता सकते हैं कि प्राचीन काल में संगीत कितना महत्वपूर्ण एवं समृद्ध विषय के रूप में प्रचलन में था। उस समय के अध्ययन से संगीत सम्बन्धी अनेक सूत्रों का पता चलता है जिनके द्वारा उस युग में संगीत की विभिन्न विधाओं, प्रयोगों एवं जनमानस में संगीत के प्रति अनुराग पर प्रकाश पड़ता है।

इस इकाई में आधुनिक काल के भारतीय संगीत के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में उस काल में संगीत की स्थिति, गायन, वादन की विभिन्न शैलियों एवं उनका प्रयोग के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप आधुनिक कालीन समय में उपलब्ध सांगीतिक सामग्री को समझ सकेंगे तथा प्राचीन संगीत से इन कालों का सम्बन्ध स्थापित कर तुलनात्मक अध्ययन भी कर सकेंगे। आप इन कालों में उपलब्ध संगीत शिक्षा के स्वरूप, विभिन्न शास्त्रों एवं प्रसिद्ध संगीतज्ञों की समृद्ध परम्परा को भी समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि मध्यकाल एवं आधुनिक काल में प्रचलित गायन, वादन की विभिन्न शैलियों एवं उनका प्रयोग किस रूप में किया जाता था।
- समझा सकेंगे कि वर्तमान समय में संगीत की जो स्थिति एवं स्वरूप है वह मध्यकाल के पश्चात् किस प्रकार से परिवर्तित होता आया है।
- बता सकेंगे कि मध्यकाल के समय में मुख्य रूप से भारतीय संगीत की पारम्परिक शैली में विदेशी शासकों द्वारा अनेक प्रयोग किए गए जिससे संगीत के क्षेत्र में एक नवीन स्वरूप का आविर्भाव हुआ।

- बता सकेंगे कि आधुनिक काल तक प्रवेश करते–करते भारतीय संगीत ने सांस्कृतिक, सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक दृष्टि से किस स्वरूप को ग्रहण किया।

1.3 आधुनिक काल

सन् 1800 ई. से लेकर अब तक का समय आधुनिक काल में आता है। लगभग 1750 ई. में अंग्रेज भारत में आए। यह समय भारतीयों के लिए अच्छा सिद्ध नहीं हुआ। भारतीय भाषाओं तथा कलाओं के साथ अंग्रेजों को कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने असभ्यता की ही संस्कृति समझी। भारतीय संगीत को उन्होंने शोरगुल से ज्यादा कुछ नहीं समझा। इसी कारण संगीत पतन की ओर जाने लगा। अंग्रेजों ने इसको कोई प्रोत्साहन नहीं दिया क्योंकि वह देश में राज्य करना चाहते थे। इससे पहले संगीत को राजाओं का श्रेय मिलता था परन्तु अंग्रेजों के समय सारे महाराजाओं को अपने आप को बचाने की चिंता थी। संगीत विलासिता का साधन बनकर रह गया। समझदार व्यक्ति इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए सन् 1900 से पहले की दशा बहुत असन्तोषजनक थी। इस अवस्था में संगीत कुछ देशी रियासतों में दीपक की लौ की भांति जलता रहा और यह शिक्षा कुछ घरानों तक सीमित रह गई। इस समय पवित्र कला संगीत एक अपवित्र वातावरण में फंस गई। संगीत जो किसी समय समाज का आभूषण था, उसको दुश्मन माना जाने लगा। भारतीय शास्त्रीय संगीत का आधुनिक काल उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से माना जाता है। यह वह समय था जब देश सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के बड़े दौर से गुजर रहा था। अंग्रेजी शासन, पश्चिमी विचारधारा, नई शिक्षा प्रणाली और तकनीकी प्रगति ने संगीत की परंपराओं को प्रभावित किया। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि शास्त्रीय संगीत दरबारी और घरानेदार परंपराओं से निकलकर समाज के व्यापक वर्ग तक पहुँचा और व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप ग्रहण करने लगा।

इस काल में दो महान संगीत सुधारकों–पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर और पंडित विष्णुनारायण भातखंडे ने शास्त्रीय संगीत को नई दिशा दी। पलुस्कर ने 1901 में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की और संगीत को धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना से जोड़ते हुए जनता के बीच लोकप्रिय बनाया। वे मानते थे कि संगीत केवल विशेष लोगों की कला नहीं बल्कि पूरे समाज की धरोहर है। दूसरी ओर भातखंडे ने शास्त्रीय संगीत को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। उन्होंने रागों का वर्गीकरण किया, थाट प्रणाली विकसित की और संगीत को लिखित स्वरूप में प्रस्तुत किया। उनकी पुस्तकों और शोध कार्यों ने शास्त्रीय संगीत की पढ़ाई को सरल और व्यवस्थित बनाया।

आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत घरानों की सीमाओं से बाहर निकला। पहले संगीत केवल पारिवारिक परंपरा के माध्यम से आगे बढ़ता था, परंतु अब बाहरी विद्यार्थियों के लिए भी घरानों के द्वार खुलने लगे। ग्वालियर, जयपुर–अतरौली, आगरा, किराना, पटियाला और बनारस घराना जैसे प्रमुख घरानों ने आधुनिक काल में अपनी विशिष्ट शैली को बनाए रखते हुए नए प्रयोगों की भी शुरुआत की। इससे शास्त्रीय संगीत और अधिक समृद्ध और विविधतापूर्ण हुआ। यही वह काल है जब भारतीय शास्त्रीय संगीत को विश्वस्तरीय पहचान मिली। पंडित रवि शंकर, उस्ताद अली अकबर खाँ, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, पंडित भीमसेन जोशी, कुमार गंधर्व, किशोरी अमोनकर, मल्लिकार्जुन मंसूर और गिरिजा देवी जैसे कलाकारों ने अपनी साधना और कला–कौशल के माध्यम से भारतीय संगीत को अंतरराष्ट्रीय मंचों तक पहुँचाया।

उनकी प्रस्तुतियों ने यह सिद्ध किया कि भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिकता और संवेदनशीलता का अनूठा स्रोत है।

तकनीकी विकास ने भी आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत के प्रसार को अत्यधिक बढ़ावा दिया। ग्रामोफोन रिकॉर्ड, रेडियो प्रसारण, मंचीय संगीत सम्मेलन, बाद में टेलीविजन और डिजिटल माध्यमों ने संगीत को घर–घर पहुँचाया। इससे नए कलाकारों को अवसर मिलने लगे और शास्त्रीय संगीत सुनने वाले श्रोताओं का दायरा भी अत्यधिक बढ़ा।

अंततः, भारतीय शास्त्रीय संगीत का आधुनिक काल नवाचार, विस्तार और पुनरुत्थान का युग है। इस काल ने परंपराओं को संरक्षित रखते हुए नई तकनीक, नए विचार और नए प्रयोगों को अपनाया। यही कारण है कि आज भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्वभर में सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है।

1.3.1 संगीत विकास के कार्य – जयपुर नरेश महाराजा प्रताप सिंह(1779 ई. से 1804 ई.) की प्रेरणा के साथ संगीत विद्वानों का एक सम्मेलन हुआ। इसके फलस्वरूप संगीत सार ग्रंथ का निर्माण हुआ। इसमें बिलावल थाट के स्वरों को शुद्ध माना गया। 19वीं शताब्दी में भारतीय संगीत के विकास के लिए काम हुए। उस्तादी गायकी की स्वरलिपि तैयार की गई। अश्लील गीतों के स्थान पर भक्ति भाव के पदों को स्थापित किया गया। संगीत शास्त्र की विस्तार से चर्चा हुई। बाकी विषयों की तरह संगीत को स्थान मिला। शास्त्रीय संगीत के प्रति जन–साधारण की रूचि पैदा हुई।

नगमाते आसफी : सन् 1813 में पटना के मोहम्मद रजा ने "नगमाते आसफी" को लिखा। इन्होंने पुरानी राग–रागिनी पद्धति को गलत बताया और अपनी एक नवीन पद्धति 6 रागों और 36 रागिनियों वाली चलाई। कई विद्वानों का विचार है कि इस ग्रंथ में ही सबसे पहले बिलावल को शुद्ध थाट माना गया।

संगीत कल्पद्रुम : सन् 1842 में कृष्णानन्द व्यास ने यह पुस्तक लिखी। यह कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इसमें उस समय तक प्रचलित ध्रुपद, धमार, ख्याल की शब्दावली दी गई है।

कैपटन विलरड : 1834 में इन्होंने एक पुस्तक A treatise on the music of Hindustan लिखी और प्रकाशित की।

एम.एस.टैगोर : बंगाल के प्रसिद्ध राजा एम.एस. टैगोर ने राग–रागिनी पद्धति को स्वीकार करके (1867–96) के समय में कई पुस्तकें लिखीं।

1- English Verses to Hindu Music
2- Six Raags and Thirty Six Raginis
3- Kantha Kaumudi
4- Sangeet Sar
5- The Universal History of music

यह पुस्तकें बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई।

कृष्णा धन बैनर्जी : इनकी पुस्तक "गीत सूत्रधार" में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति से सम्बन्धित अनेक ध्रुपदों का संकलन है। इनमें ध्रुपदों की रचनाओं की स्वरलिपि स्टाफ नोटेशन में की गई है। दक्षिण के संगीत विद्वान आपकी संगीत–रचनाओं को बहुत आदर और श्रद्धा के साथ गाते हैं।

पन्नालाल गोस्वामी : इनका संगीत ग्रंथ "नाद विनोद" 1896 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें रागों के प्राचीन स्वरूप, 6 राग 36 रागिनियों के गायन के विभिन्न पक्षों और सितार के पदों के बारे में विशेष जानकारी मिलती है।

संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी : कर्नाटक संगीत की यह पुस्तक सुभाराव द्वारा प्रकाशित हुई। इसमें शास्त्रीय रचनाओं के अलावा व्यंकटमुखी, श्याम शास्त्री, रामास्वामी आदि कर्नाटक के अनेक प्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाएं शामिल हैं।

मोहम्मद करम इमाम : इनकी उर्दू की रचना मुआदनुल मौसिकी 19वीं शताब्दी में प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने कहा कि ऋषभ ही क्यों उतरता है, स और प स्वर क्यों नहीं। इसके अलावा 12 स्वरों के अलग–अलग नाम हैं।

राजा नवाब अली : राजा नवाब अली, जो कि लाहौर के रहने वाले थे, उन्होंने सन् 1911 ई. में मारिफुन्नगमात की रचना की। यह भातखण्डे जी से प्रभावित हुए और उनके सम्पर्क में आए। इसका हिन्दी में भी अनुवाद हो चुका है।

1.3.2 वर्तमान शिक्षा का स्वरूप – आधुनिक संगीत में विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने का श्रेय पंडित भातखंडे जी और पुलस्कर जी को जाता है।

- **पंडित विष्णु नारायण भातखंडे** : 10 अगस्त 1860 को महाराष्ट्र में भातखंडे जी का जन्म हुआ। उन्होंने बी.ए., एल.एल.बी. तक की शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने भारतीय संगीत को ऊंचा स्थान दिलाने के लिए अपने प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन किया। सारे भारत की यात्रा करने के बाद जो सामग्री जहां मिली, उसको प्राप्त किया। प्राचीन एवं नवीन विचारों को इकट्ठा करके उस पर शास्त्रों की सहमति के साथ अपना दृष्टिकोण निर्धारित किया।

संगीत के क्षेत्र में विशेष कार्य : उन दिनों में राग–रागिनी की प्रथा प्रचलित थी। संगीतकार ज्यादा शिक्षित न होने के कारण राग के नियमों की ओर ध्यान न देते हुए जिस प्रकार भी उनको सिखलाया जाता था, ग्रहण कर लेते थे। भातखंडे जी ने कई स्थानों पर अपने ग्रंथों में इस प्रकार का वर्णन किया है। बहुत बड़े–बड़े गायक गायन तो बहुत अच्छा करते थे परन्तु उनको न तो राग का ज्ञान था और न ही थाट का ज्ञान था। वे यह भी नहीं बता सकते थे कि व कौन से स्वर लगा रहे हैं। यह देखकर भातखंडे जी ने दक्षिण मेल पद्धति से प्रभावित होकर "जनक थाट पद्धति" का प्रचार किया, जिसको लोगों ने समझा, उपयोगिता का ध्यान रखा और अपना लिया। इनमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पढ़े–लिखे थे। इसी कारण वे उच्च कोटि तथा निम्न कोटि के संगीतकारों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सके।

ग्रंथ–लेखन : भातखंडे जी ने अभिनव राग मंजरी संस्कृत में और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका–6 भागों में और मराठी भाषा में भी ग्रंथ लिखे। इसके अलावा अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में भी पुस्तकें लिखी।

इन्होंने प्राचीन उस्तादी बंदिशों को उसी रूप में कायम रखने के लिए अपनी स्वरलिपि का निर्माण करके उसमें बंदिशें लिखी। आने वाले विद्यार्थी वर्ग के लिए लक्षण गीतों का प्रचार किया। चतुर, चतर आदि उपनाम इनकी रचनाओं में मिलते हैं। हररंग के उपनाम तथा गीत उन्होंने अपने उस्ताद मोहम्मद अली खां साहब की स्मृति में लिखे।

संगीत सम्मेलन तथा संगीत शिक्षा संस्थाएं : भातखंडे जी ने भारत के विभिन्न स्थानों बड़ौदा, दिल्ली, बनारस, लखनऊ आदि में संगीत सम्मेलन किए। इसमें संगीत सम्बन्धी शास्त्र–चर्चा और प्रसिद्ध कलाकारों को इकट्ठा करके साधारण जनता को संगीत कला का परिचय करवाया। ग्वालियर, बड़ौदा, लखनऊ आदि स्थानों पर संगीत शिक्षा का प्रचार करने के लिए संगीत के विद्यालयों की स्थापना की गई, जो आज भी सफलतापूर्वक चल रहे हैं।

- **पंडित विष्णु दिगम्बर पुलस्कर** : 1872 में महाराष्ट्र में पुलस्कर जी का जन्म हुआ। संगीत के संस्कार इनके अंदर थे। बाल्यावस्था में ही आतिशबाजी के साथ नेत्र चले जाने के कारण यह पढ़ाई नहीं कर सके तथा संगीत की ओर पूरा ध्यान देने लगे।

संगीत क्षेत्र में महान कार्य : पंडित जी ने संगीत के उद्धार का महान् कार्य किया। उनके समय में भारतीय संगीत अनुशीलन के अन्धकार में पड़ा था। उसकी अपनी पवित्रता समाप्त हो गई थी। ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत से घृणा की जाती थी यह देखकर इस महान् आत्मा का दिल कांप उठा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने गीतों में से अश्लील तथा श्रृंगार रस के शब्द निकालकर भक्ति रस के शब्दों का समावेश किया। फलस्वरूप इनकी वाणी का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लोगों ने इनके संगीत को अपनाया।

संगीत प्रचार के लिए इन्होंने संगीत विद्यालय खोले तथा अनेक योग्य शिष्य तैयार किए। सबसे पहले 1907 में "लाहौर गन्धर्व" महाविद्यालय की स्थापना की। इसके बाद दिल्ली, बम्बई तथा पूना में संगीत संस्थाओं की स्थापना भी की। उनके कुछ गन्धर्व रत्नों के नाम इस प्रकार हैं–पंडित विनायक राव पटवर्धन, ओंकार नाथ ठाकुर, पंडित नारायण राव व्यास, श्री शंकर राव व्यास, नारायण राव, सोरेश्वर खरे आदि।

ग्रंथ लेखन : आप ने बहुत सारे ग्रंथों की भी रचना की। संगीत बाल बोध, संगीत बाल प्रकाश, राग प्रवेश आदि पंडित जी की महान कृतियां हैं। इन्होंने एक मासिक पत्रिका भी चलाई जो कि संस्था में ही प्रकाशित होती थी। कुछ समय बाद वह बंद हो गई।

भक्ति भावना तथा अंतिम जीवन : पंडित जी को समाज में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने संसार से वैराग्य ले लिया और सब कुछ छोड़कर अपने द्वारा बनाए "राम नाम आधार" आश्रम में रहने लगे। आप रामायण और "रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम" पंक्तियों का गायन करने लगे। जैजैवंती राग के स्वरों में गाई हुई उनकी यह धुन भारतीयों के कानों में आज भी गूंजती है।

इस प्रकार इन दोनों महान् संगीतकारों(पं. भातखंडे और पं. पुलस्कर) के महान प्रयत्नों तथा मेहनत के कारण भारतीय संगीत अपना स्थान प्राप्त कर सका और उन्नति की ओर चल पड़ा। आज संगीत के क्रियात्मक तथा शास्त्रीय दोनों पक्षों का समुचित विकास हो रहा है। आज यहां बड़े–बड़े

संगीतकार अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। वहां दूसरी ओर संगीत शास्त्र में नए अनुसंधानों द्वारा संगीत का विस्तार बहुत तीव्र गति से हो रहा है। आज भारतीय संगीत दिन–प्रतिदिन बहुत उन्नति कर रहा है तथा दूसरे विषयों की भांति उचित स्थान प्राप्त कर रहा है।

- **ओंकारनाथ ठाकुर** : पंडित ओंकर नाथ ठाकुर का संगीत–जगत् को दिया गया योगदान हमेशा अमर रहेगा। आप एक उच्चकोटि के संगीतकार थे। आपने संगीतांजली, प्रणव भारती नामक पुस्तकें लिखी। 1955 में आप को भारत सरकार की ओर से पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। आप ग्वालियर घराने से सम्बन्ध रखते थे। आप ख्याल गायन में बहुत माहिर थे परन्तु ध्रुपद, ठुमरी, भजन भी गाते थे।

- **उस्ताद अलाउद्दीन खां** : उस्ताद अलाउद्दीन खां का संगीत क्षेत्र में विशेष योगदान है। आप को संगीत के लिए कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा परन्तु इससे आपकी जिज्ञासा कम नहीं हुई। आपने गायन और वादन दोनों में ही कुशलता प्राप्त की। आपको राष्ट्रपति की ओर से पद्म भूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपने संगीत के क्षेत्र में उच्च कोटि के शिष्य तैयार किए जिनमें से पं. रवि शंकर, उ0 अली अकबर खां जी का नाम उल्लेखनीय है।

आधुनिक युग के उभरते कलाकार – 20वीं शताब्दी में बहुत सारे उभरते कलाकार संगीत के स्तर को ऊंचा करने की कोशिश कर रहे हैं, उनमें पंडित विलायत खां, पंडित रवि शंकर, अली अकबर खां, सुजात खां, अल्ला रक्खा खां, जाकिर हुसैन, हरि प्रसाद चौरसिया, बिसमिल्ला खां आदि का नाम उल्लेखनीय है। यह संगीतकार अपने–अपने क्षेत्र में संगीत का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं।

आधुनिक युग में संगीत विकास के अन्य साधन – आधुनिक युग रेडियो तथा टी.वी. का युग है। रेडियो तथा टी.वी. द्वारा उच्च कोटि के संगीतकारों के विचार तथा उनकी कला पेश की जाती है, जिससे संगीत का काफी प्रचार हुआ है।

संगीत शिक्षा संस्थाएं – आधुनिक युग में बहुत सारी संगीत संस्थाएं संगीत की शिक्षा दे रही हैं। जैसे प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, भातखण्डे कॉलेज लखनऊ(मैरिस म्यूज़िक कॉलेज), गन्धर्व महाविद्याालय पूना आदि का नाम उल्लेखनीय है। इसके अलावा संगीत स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में विषय के रूप में भी सिखाया जाता है।

संगीत पुस्तकें : संगीत के विभिन्न पक्षों पर (क्रियात्मक एवं सैद्धान्तिक) पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। संगीत, संगीत कला विहार, इंडियन म्यूजिक जनरल, मासिक पत्रिकाएं संगीत के प्रत्येक विषय पर रोशनी डाल रही हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. गीत गोविन्द पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. मानसिंह तोमर काल में संगीत की स्थिति को संक्षेप में समझाइए।
3. आधुनिक कालीन प्रसिद्ध संगीत ग्रंथों के नाम बताइए।

4. उस्ताद अलाउद्दीन खां के सांगीतिक योगदान को बताइए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. मैरिस म्यूजिक कॉलेज इलाहाबाद में स्थित है।
2. अभिनव राग मंजरी के रचयिता पं.वि.दिगम्बर पुलस्कर हैं।
3. भक्ति आंदोलन के प्रचारकों में सूरदास प्रमुख थे।
4. तानसेन द्वारा राग मियां की सारंग की रचना हुई।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. संगीत दर्पण ग्रंथ के लेखक _____ हैं।
2. गीत गोविन्द की रचना _____शताब्दी में हुई।
3. सर्वप्रथम सन् _____ में लाहौर गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना हुई।
4. पं.ओमकार नाथ ठाकुर को सन् _____में पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक के भारतीय संगीत के इतिहास के विषय में जान चुके होंगे। मध्यकाल में मुख्य रूप से विदेशी आक्रमणों से भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था पर विशेष प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से उत्तर भारतीय संगीत पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। मध्यकाल में खिलजी, तुगलक, लोधी एवं मुगल शासकों का तथा आधुनिक काल में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव रहा, जिसका प्रभाव संगीत की विभिन्न विधाओं एवं संगीतज्ञों पर पड़ा। इन कालों में ख्याल, तराना, गज़ल, कव्वाली आदि अनेक नवीन विधाओं का मूल्यांकन हुआ तथा अनेक रागों एवं तालों का आविष्कार भी हुआ। मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर चली। भक्ति के मार्ग को जन–जन तक पहुंचाने हेतु संगीत का माध्यम ही विशेष रूप से रहा। भक्ति संगीत में प्रमुख रूप से मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि विभूतियां रहीं। मध्यकाल में प्रमुख ग्रन्थों में स्वरमेल कलानिधी, संगीत दर्पण, राग तत्व विबोध, संगीत पारिजात, अनूप संगीत रत्नाकर, हृदय कौतुक आदि की रचना हुई। आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन से भारतीय संगीत का पतन होने लगा। 19वीं शताब्दी से भारतीय संगीत के विकास के लिए कार्य शुरू हुए। अनेक ग्रन्थ नगमाते आसफी, संगीत कल्पद्रुम, क्रमिक पुस्तक मालिका, संगीतांजलि आदि ग्रन्थों की रचना हुई। पं. वि. नारायण भातखंडे एवं पं. वि. दिगम्बर पुलस्कर ने विशेष रूप से संगीत की दशा एवं शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के सफल प्रयास किए।

1.6 शब्दावली

1. **द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक** – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे – षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।

2. **प्रबन्ध** – प्राचीनकाल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक आदि आते थे। प्रबन्ध की चार धातुएँ उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग हैं।

3. **कव्वाली –** कव्वाली गायन शैली का एक प्रकार है। प्रारम्भ में यह मुस्लिम धर्म में अधिकतर भक्ति भाव के लिए गाई जाती थी परन्तु आज इसके कई रूप दिखते हैं।

4. **जाति गायन –** जिस प्रकार वर्तमान में राग गायन प्रचलित है, उसी प्रकार प्राचीन समय में जाति गायन का प्रचलन था।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. **असत्य** **2. असत्य** **3. सत्य** **4. सत्य**

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. पं.दामोदर 2. 12वीं 3. 1907 4. 1955

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1992), संगीत बोध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु, (2010) भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा, (2004) *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण, (1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्रीः

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, वसन्त, (1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति, (1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, (1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक कालीन प्रसिद्ध ग्रंथ एंव संगीतज्ञों के विषय में बताते हुए इस काल का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई 2 – श्रुति एवं स्वर की व्याख्या (प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार); दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 श्रुति और स्वर विभाजन
2.4 प्राचीन काल में श्रुति और स्वर
2.5 मध्यकाल में श्रुति और स्वर
2.6 आधुनिक काल में श्रुति और स्वर
2.7 दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (BAMI(N)-302) की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे। आप थाट पद्धति को भी जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसमें प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार स्वर एवं श्रुति की स्थिति. एवं स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। इसमें विद्वानों के मतों को भी बताया गया है। इसमें बताया गया है कि संगीत में श्रुति एवं स्वर का क्या अस्तित्व है तथा श्रुति एवं स्वरों की संख्या एवं स्वरूप क्या है। संगीत में स्वर की परम्परा प्राचीन समय से किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। इस इकाई में आपको दक्षिण भारतीय संगीत के विषय में भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप श्रुतियों पर स्वर स्थापना (प्राचीन से वर्तमान तक) को समझ सकेंगे। साथ ही स्वर की शुद्ध एवं विकृत स्थिति एवं उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को भी आप इस इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी समझ सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि भारतीय संगीत के मूल आधार स्वर को प्राचीन से आधुनिक काल तक स्थापित करने हेतु क्या प्रणाली रही है।
- समझ सकेंगे कि शुद्ध एवं विकृत स्वरों में परस्पर क्या सम्बन्ध रहा है तथा सप्तक की 22 श्रुतियों में इसकी स्थापना का मुख्य आधार क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के प्रसिद्ध विद्वानों के साथ–साथ समकालीन विद्वानों के स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में क्या मत हैं।
- बता सकेंगे कि विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वर एवं श्रुति का सम्बन्ध किस प्रकार अन्य से स्थापित किया गया है।
- आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी जान सकेंगे।

2.3 श्रुति और स्वर विभाजन

इसके पहले कि हम श्रुति–स्वर विभाजन को समझें यह आवश्यक है कि श्रुति तथा स्वर पर अलग–अलग विचार कर लें।

श्रुति – संस्कृत में 'श्रु' शब्द का अर्थ होता है 'सुनना'। इसलिए श्रुति का अर्थ हुआ 'सुना हुआ'। प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी श्रुति की परिभाषा इस प्रकार की है, 'श्रुयते इति श्रुतिः'। अर्थात जो ध्वनि कानों को सुनाई पड़े वही श्रुति है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर यह परिभाषा पूर्ण नहीं है, क्योंकि श्रुति का संगीतोपयोगी होना आवश्यक है और कानों को तो अनेक ऐसी ध्वनियां सुनाई पड़ सकती हैं जिनका सम्बन्ध संगीत से बिल्कुल नहीं है। इसलिए इतना कह देना कि जो ध्वनि कानों को सुनाई पड़े वही श्रुति है, पर्याप्त नहीं है। आधुनिक काल के ग्रन्थकारों ने श्रुति की पूर्ण परिभाषा इस प्रकार की हैः–

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम्।।

अर्थात् वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते हैं। 'अलग' तथा 'स्पष्ट' शब्द यहाँ पर बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि श्रुति का यह गुण है कि उसे कानों को स्पष्ट सुनाई पड़ना चाहिए तथा पास की दो श्रुतियों में इतना अन्तर होना चाहिए कि वे एक–दूसरे से अलग पहचानी जा सकें। इसलिए संगीत के विद्वानों का विचार है कि ऐसी ध्वनियाँ जो एक दूसरे से अलग तथा कानों को स्पष्ट सुनाई पडें, श्रुति कहलाएंगी। एक सप्तक में कुल 22 श्रुतियाँ हो सकती हैं। कहने का अर्थ यह हुआ कि मध्य सा से तार सा(एक सप्तक) के बीच में केवल 22 श्रुतियाँ हो सकती हैं।

स्वर – एक सप्तक की 22 श्रुतियों में से चुनी गयी 7 श्रुतियाँ जो एक दूसरे से काफी अन्तर पर स्थापित हैं तथा जो सुनने में मधुर हैं, स्वर कहलाती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रुति और स्वर में अन्तर नहीं है। केवल अन्तर यह है कि 22 श्रुतियों में से दूर–दूर की 7 श्रुतियाँ छाँट ली गई और उन्हीं छाँटी गई 7 श्रुतियों को शुद्ध स्वरों के नाम से पुकारा जाता है। सात स्वरों को षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद के नामों से पुकारा जाता है। "संगीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ में स्वर की परिभाषा इस प्रकार की गई हैः–

श्रुत्यन्तरभावीयः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रन्जयतिश्रोतृचितं स स्वर उच्यते।।

अर्थात् वे मधुर ध्वनियाँ, जो बराबर स्थिर रहें तथा जिनकी झनकार मन को लुभाने वाली हों, स्वर कहलाती हैं।

स्वरों की उत्पत्ति – वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचार था और वे स्वर–उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहलाते थे। उदात्त ऊँचे स्वर को कहते थे तथा अनुदात्त नीचे स्वर को। स्वरित स्वर के लिए कोई निश्चित मत नहीं था। कुछ लोग इस स्वर को उदात्त तथा अनुदात्त स्वरों के बीच का स्वर मानते थे, कुछ लोग इसे उदात्त से ऊँचा स्वर मानते थे तथा कुछ लोग इसे अनुदात्त से नीचा का स्वर मानते थे। इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, ये तीनों स्वर थे जो क्रमशः गांधार, ऋषभ तथा षड्ज स्वरों के समान माने जा सकते हैं। वैदिक काल में इन तीनों स्वरों को प्रथमा, द्वितीया और तृतीया के नामों से पुकारा जाता था। ऐसा भास होता है कि गांधार स्वर प्रथम होने के कारण उस समय गांधार ग्राम का प्रचार था। कुछ समय के बाद वैदिक काल में ही इन तीन स्वरों के अलावा गांधार से एक ऊँचा स्वर 'चतुर्थ' नाम से प्रचार में आया। इस चौथे स्वर को कुछ लोग 'कुष्ठा' के नाम से पुकारते थे तथा इसे मध्यम स्वर के अनुरूप मानते थे। इस प्रकार अब कुल मिलाकर 'सा रे ग म' ये चार स्वर प्रचार में आ गए थे। मध्यम स्वर के आने से मध्यम ग्राम प्रचार में आया। यह बात हमको ध्यान में रखनी चाहिए कि वैदिक स्वरों में षड्ज–पंचम भाव की प्रधानता थी और इस कारण पंचम, धैवत तथा निषाद ये तीन अन्य स्वर प्रचार में आए। स्वर–संवादित्व के अनुसार प्रथमा अथवा उदात्त के अन्तर्गत गांधार तथा निषाद स्वर हुए, द्वितीया अथवा अनुदात्त के अन्तर्गत ऋषम तथा धैवत स्वर हुए और तृतीया अथवा स्वरित के अन्तर्गत षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वर हुए। इस प्रकार सातों स्वर प्रचार में आए। 'नारदीय शिक्षा' नामक ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख मिलता हैः–

उदात्ते निषाद गांधारौ, अनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते, षड्जमध्यमपंचमाः।।

शिक्षाकार ने नारदीय शिक्षा में, यद्यपि श्रुति की परिभाषा अथवा व्याख्या नहीं दी है तथापि उन्होंने भी श्रुति को महत्व दिया है। इसी प्रकार यद्यपि शिक्षाकार ने श्रुति–संख्या का भी उल्लेख नहीं किया तथापि ग्रामोल्लेख, साधारण स्वरोल्लेख तथा पंचम व धैवत की ह्रास एवं वृद्धि विषयक उल्लेखों से आभास होता है कि शिक्षाकार को बाईस श्रुतियों का ज्ञान था।

शिक्षाकार ने पांच श्रुति जातियों का भी नामोल्लेख किया है, परंतु वे श्रुति–जातियाँ अधिक स्पष्ट नहीं हैं। शिक्षाकार ने श्रुति जातियों पर चर्चा करते हुए कहा है कि आयता जाति का प्रयोग नीचे के स्वरों में, मृदु जाति का उसके विपरित अर्थात् उच्च स्वरों में तथा मध्या जाति का प्रयोग अपने स्वर में अर्थात् समान स्वरों में होता है। इस कथन से तात्पर्य यह भी हो सकता है कि अनुदात्त स्वरों में आयता, उदात्त में मृदु तथा स्वरित स्वरों में मध्या श्रुति–जाति का प्रयोग होता है। परंतु श्रुति जातियों का प्रयोजन एवं उनके वास्तविक लक्षण अथवा स्वरुप के वर्णन प्राप्त न होने के कारण शिक्षाकारोक्त श्रुति–जातियाँ स्पष्ट नहीं हो पाती। शिक्षाकार ने वैदिक स्वरों के अन्तर्गत भी श्रुति–जातियों का उल्लेख किया है। इसके अंतर्गत शिक्षाकार ने द्वितीय स्वर(वेणु का गान्धार) की श्रुति जातियाँ–मृदु, मध्या तथा आयता बताई हैं। यदि वैदिक संगीत का द्वितीय स्वर, लौकिक संगीत का गान्धार है, जैसा सामान्यतया माना जाता है, तब यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि गान्धार स्वर द्विश्रुतिक स्वर है। इस प्रकार उपरोक्त कथन में यह भी स्पष्ट नहीं होता कि द्वितीय स्वर गान्धार है अथवा लौकिक संगीत का द्वितीय स्वर–ऋषभ।

नारदीय शिक्षा में वर्णित स्वरोल्लेखों के इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन संगीत दो भिन्न–भिन्न धाराओं में प्रचलित था–वैदिक संगीत तथा लौकिक संगीत। तत्कालीन समाज में इन दोनों प्रकार की संगीत शैलियों का प्रचार था तथा लौकिक संगीत को प्राचीन गौरवमय वैदिक परम्परा से सम्बद्ध करने की प्रथा का चलन था। इसी क्रम में वैदिक संगीत के स्वरों तथा लौकिक संगीत के स्वरों की नारदीय शिक्षा में, तुलना की गई। इसी प्रकार लौकिक स्वरों की जातियों, उनके वर्ण, गायक, शरीरगत उत्पत्ति स्थान, देवता आदि उल्लेखों से भी यही संकेत प्राप्त होते हैं।

पाणिनि के समय तक संगीत के सातों स्वर प्रचार में आ चुके थे। यही सात स्वर तथा उनके पाँच विकृत रूप मिलाकर 12 स्वर आजकल प्रचलित हैं। प्राचीन समय में कुछ लोगों का विचार था कि 7 स्वरों की उत्पत्ति अनेक पशु–पक्षियों द्वारा हुई। ग्रन्थों में भी इस बात का उल्लेख इस प्रकार मिलता है:–

मयूर चातकच्छाग क्रौंच कोकिल दुर्दुरा।
गजश्च सप्त षड्जादोन्क्रमा दुच्चारयन्त्यमी।।

अर्थात् मयूर से 'सा', चातक से 'रे', छाग से 'ग', कौंच से 'म', कोकिल से 'प', दादुर से 'ध' तथा हस्ति से 'नि' स्वर उत्पन्न हुआ। कुछ लोगों ने 7 स्वरों को अलग जातियों में विभाजित किया। उनके मतानुसार सा, म तथा प स्वर ब्राह्मण जाति के, रे तथा ध स्वर क्षत्रिय जाति के और ग तथा नि स्वर वैश्य जाति के हैं। इसी प्रकार कुछ लोगों ने सात स्वरों की उत्पत्ति विभिन्न देवताओं से भी मानी, परन्तु ये सब मत निराधार हैं। उदाहरण के लिए पशु–पक्षियों से स्वरों की उत्पत्ति वाला मत लीजिए। प्रारम्भिक अवस्था में जब लोगों को स्वरों का बिल्कुल ज्ञान नहीं था उस समय यह पता लगाना एक असम्भव बात थी कि मयूर से चातक की ध्वनि ऊँची है अथवा क्रौंच से कोकिल की ध्वनि ऊँची है इत्यादि। यदि कोकिल की ध्वनि क्रौंच पक्षी से ऊँची भी है तो वह किस स्वर में बोलती है, इसका कोई मापदण्ड तो मालूम नहीं था। इसीलिए यह कहना कि ऊपर लिखे पशु–पक्षियों द्वारा सात स्वर निकले, कोई सार नहीं रखता। यह तो स्वर–ज्ञान होने पर लोगों के ध्यान में आया कि ऊपर लिखे पशु–पक्षियों द्वारा हमको विभिन्न सात स्वर प्राप्त हो सकते हैं।

यह एक स्वाभाविक बात है कि प्रत्येक वस्तु का क्रमिक विकास होता है। यह सम्भव नहीं कि पुराने समय में एक साथ ही सात स्वरों की उत्पत्ति हुई बल्कि उसका भी विकास धीमें–धीमें ही हुआ।

श्रुति–स्वर विभाजन – सप्तक की बाईस श्रुतियों को सात स्वरों में बाँट दिया गया है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक यदि हम श्रुति–स्वर विभाजन का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होता है कि तीनों कालों(प्राचीन, मध्य व आधुनिक) के ग्रन्थकारों ने यह विभाजन नीचे लिखे सिद्धान्त के आधार पर किया:–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

अर्थात षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद तथा गांधार में दो–दो श्रुतियाँ, ऋषभ तथा धैवत स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। इस सिद्धान्त को तीनों कालों के ग्रन्थकार अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना बाईस श्रुतियों पर अलग–अलग ढंग से करते हैं। अतएव अब हम तीनों कालों के ग्रन्थकारों का श्रुति–स्वर विभाजन अलग–अलग समझेंगे।

2.4 प्राचीन काल में श्रुति और स्वर

प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ भरत का 'नाट्यशास्त्र' तथा शारंगदेव का 'संगीत रत्नाकर' है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' का रचना–काल पाँचवीं शताब्दी तथा शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' का रचना–काल 13वीं शताब्दी का माना जाता है। इन ग्रन्थकारों ने अपने शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की है। कहने का अर्थ यह है कि यदि 'सा' में चार श्रुतियाँ हैं तो 'सा' की स्थापना इन चार श्रुतियों की अन्तिम श्रुति यानी चौथी श्रुति पर की है। इस प्रकार उनसे सात शुद्ध स्वर नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित थे, सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर।

भरत ने ऊपर लिखे 7 स्वरों के अतिरिक्त अन्तर गांधार और 'काकली निषाद' इन दो विकृत स्वरों का भी उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। इससे यह पता चलता है कि भरत के समय में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर 9 स्वर प्रचार में थे। परन्तु शारंगदेव के ग्रन्थ में शुद्ध तथा विकृत मिलाकर कुल 14 स्वरों का वर्णन मिलता है। ये 14 स्वर इस प्रकार थेः– (1)कौशिक 'नि' (2)काकली 'नि' (3)च्युत 'सा' (4)अच्युत 'सा' (5)विकृत 'रे' (6)'ग' (7)साधारण 'ग' (8)अन्तर 'ग' (9)च्युत 'म' (10)अच्युत 'म' (11)कौशिक 'प' (12)'प' (13)विकृत 'ध' (14) 'नि'।

आगे सरलता के लिए भरत तथा शारंगदेव के शुद्ध और विकृत स्वरों को 22–22 श्रुतियों पर स्थापित किया जाता हैः–

क्र.सं.	श्रुति का नाम	भरत के स्वर	शारंगदेव के स्वर
1	तीव्रा		कौशिक 'नि'
2	कुमुद्वती	काकली 'नि'	काकली 'नि'
3	मन्द्रा		च्युत 'सा'
4	छंदोवती	'सा'	अच्युत 'सा'
5	दयावती		
6	रंजनी		
7	रक्तिका	'रे'	विकृत 'रे'
8	रौद्री		
9	क्रोधा	'ग'	'ग'
10	वज्रिका		
11	प्रसारिणी	अन्तर 'ग'	साधारण 'ग'
12	प्रीति		अन्तर 'ग'
13	मार्जनी	'म'	च्युत 'म'
14	क्षिती		
15	रक्ता		अच्युत 'म'
16	संदीपनी	'प'	कौशिक 'प'
17	आलापिनी		'प'
18	मदन्ती		
19	रोहिणी		

20	रम्या	'ध'	विकृत 'ध'
21	उग्रा		
22	क्षोभिणी	'नि'	'नि'

स्वर' ही तो संगीत का पर्याय है। इसलिए 'स्वर' के साथ जिन पशु–पक्षियों के सम्बन्धों की चर्चा प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने की है वह भी एक प्रकार से उपर्युक्त कारणों से जुड़ी हुई है। षडजादि 'स्वरों' से जिन पक्षियों और पशुओं की ध्वनियों का सम्बन्ध जोड़ा गया है उसे इसी कारण न तो कोरी कल्पना कहा जा सकता है और न ही इन विचारों को किसी अन्य दृष्टि से निराधार कहा जा सकता है।

संगीत मकरंद में नारद ने षडजादि स्वरों के साथ पक्षियों या पशुओं की ध्वनि का सम्बन्ध बताया है, उन सब में समानता अधिक है और भिन्नता कम। षडज, पंचम और निषाद–इन तीन स्वरों के साथ मोर, कोयल और हाथी की ध्वनियों के सम्बन्ध में तो इस वर्ग के सभी विद्वान एकमत हैं शेष स्वरों में भी कोई बहुत बड़ा मतभेद नहीं है।

प्राचीन काल के ग्रन्थकारों में एक अन्य विशेषता यह भी थी कि वे सप्तक की 22 श्रुतियों को समान मानते थे। उनके प्रत्येक पास–पास की दो श्रुतियों का अन्तर समान होता था अर्थात जितना अन्तर पहली श्रुति और दूसरी श्रुति में था उतना ही अन्तर दूसरी व तीसरी श्रुति में था। इस प्रकार सारी श्रुतियाँ समानान्तर पर थी। समानान्तर पर होने से उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक 'प्रमाण' बन गया था और वे इस अन्तर को 'प्रमाण श्रुति' कहकर पुकारते थे। प्राचीन काल में वे लोग स्वरों को श्रुतियों के नाम से पुकारते थे, क्योंकि वे एक सप्तक के 22 बराबर–बराबर भाग करते थे। इस प्रकार वह किसी भी स्वर को श्रुति से नाप सकते थे।

2.5 मध्यकाल में श्रुति और स्वर

यह समय 14वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में हमको उत्तर–हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चार प्रमुख ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं–(1) कवि लोचन की लिखी "राग–तरंगिणी" जो लगभग 15वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखी गई (2) पं. अहोबल कृत "संगीत पारिजात" जो 17वीं शताब्दी में लिखी गई (3) हृदय नारायण देव कृत "हृदय कौतुक" और "हृदय प्रकाश" जो 17वीं शताब्दी के अन्त में लिखी गई (4) पं. श्रीनिवास कृत "राग तत्व विबोध" जो 18वीं शताब्दी में लिखा गई।

प्राचीन काल के ग्रन्थकारों की तरह मध्यकालीन संगीत ग्रन्थकारों ने भी अपने 7 शुद्ध स्वरों की स्थापना "चतुश्चैव" वाले सिद्धान्त को मानकर स्वरों की अन्तिम श्रुति पर की है। अर्थात् मध्यकालीन शुद्ध स्वर भी प्राचीन काल की तरह 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित हैं– सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर।

कवि लोचन के ग्रन्थ "राग तरंगिणी" में 18 स्वरों का वर्णन मिलता है। लोचन अपने शुद्ध 'रे', 'म' तथा 'नि' स्वरों को क्रमशः तीव्र 'रे', अति तीव्रतम 'ग' तथा तीव्रतर 'ध' कहकर पुकारते थे। उन्होंने अपने विकृत स्वर, शुद्ध स्वर के ऊपर स्थापित किए हैं। जैसे शुद्ध ग के बाद तीव्र 'ग', तीव्रतर 'ग', तीव्रतम 'ग' अथवा तीव्र 'रे' के बाद तीव्रतर 'रे' इत्यादि। वर्तमान में ऋषभ, गांधार, धैवत, निषाद स्वर, शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल होते हैं। अहोबल के यही चार स्वर शुद्ध अवस्था से एक श्रुति नीचे होने पर

कोमल और यही चारों स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। जैसे सातवीं पर अहोबल का शुद्ध–ऋषभ, छठी पर कोमल–ऋषभ और पाँचवीं पर पूर्व–ऋषभ है, नौवीं श्रुति पर शुद्ध–गांधार, आठवीं पर कोमल–गांधार और सातवीं पर पूर्व–गांधार है। इसी प्रकार धैवत और निषाद भी एक–एक श्रुति घटने पर कोमल और दो–दो श्रुति घटने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। अतः चार कोमल और चार ही पूर्व विकृत कुल आठ विकृत–स्वर अपने शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर बनते थे। इस प्रकार अहोबल ने 14 तीव्र और 8 कोमल मिलाकर 22 विकृत–स्वर कहे हैं और उन्होंने इनमें सात शुद्ध स्वरों को मिला कर कुल 29 स्वरों का उल्लेख संगीत–पारिजात में किया। लोचन तथा अहोबल के विभिन्न स्वरों को 22 श्रुतियों पर स्थापित करके समझाया जाता है :–

श्रुति.सं.	लोचन के स्वर	अहोबल के स्वर
1	तीव्र 'नि'	
2	तीव्रतर 'नि'	
3	तीव्रतम 'नि'	
4	'सा'	'सा'
5		पूर्व 'रे'
6		कोमल 'रे'
7	तीव्र 'रे'	पूर्व 'ग'
8	तीव्रतर 'रे'	कोमल 'ग'
9	'ग'	'ग'
10	तीव्र 'ग'	
11	तीव्रतर 'ग'	
12	तीव्रतम 'ग'	
13	अति तीव्रतम 'ग'	'म'
14	तीव्र 'म'	
15	तीव्रतर 'म'	
16	तीव्रतम 'म'	
17		'प'
18		पूर्व 'ध'
19		कोमल 'ध'
20	'ध'	पूर्व 'नि'
21	तीव्र 'ध'	कोमल 'नि'
22	तीव्रतर 'ध'	'नि'

अहोबल के रिक्त स्थान, लोचन के स्वर के समान हैं।

मध्यकाल के अन्य ग्रन्थकारों ने भी अपने स्वर इसी प्रकार बाईस श्रुतियों पर स्थापित किए थे। केवल लोचन और अहोबल के स्वरों से ही हम मध्यकालीन श्रुति–स्वर–विभाजन को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इसी काल में दक्षिण भारतीय संगीत के विद्वानों ने विभिन्न स्वर बाईस श्रुतियों पर स्थापित किए हैं।

पं. व्यंकटमुखी ने स्वर्ण और उससे बने आभूषणों में जो अन्तर है, वही श्रुति और स्वर में कहा है। प्राचीन ग्रन्थकार भरतादि के अनुसार व्यंकटमुखी ने बाइस श्रुतियाँ स्वीकार की हैं। बाईस श्रुतियों में स्वरों

का विभाजन करते हुए कहा है कि षड्ज से तीसरी श्रुति पर शुद्ध–ऋषभ, शुद्ध–ऋषभ से दूसरी श्रुति पर शुद्ध–गांधार, शुद्ध–गांधार से मध्यम की चार श्रुतियाँ हैं, जिनमें से प्रथम पर साधारण–गांधार, साधारण–गांधार से दूसरी श्रुति पर अन्तर–गांधार और अन्तर–गांधार से एक श्रुति पर शुद्ध–मध्यम कहा है। शुद्ध–मध्यम से चार श्रुति का पंचम विद्वानों ने माना है, जिनमें से तीसरी श्रुति पर वराली–मध्यम, वराली–मध्यम से एक श्रुति पर पंचम, पंचम से तीसरी श्रुति पर शुद्ध–धैवत, शुद्ध धैवत से दूसरी श्रुति पर शुद्ध–निषाद है। षड्ज चार श्रुति का कहा गया है, जिसमें पहली श्रुति पर कौशिक–निषाद, कौशिक–निषाद से दूसरी श्रुति पर काकली–निषाद और काकली–निषाद से एक श्रुति पर स्वयं षड्ज विद्यमान है।

व्यंकटमुखी ने मुखारी राग के स्वरों को शुद्ध माना है। जिसके स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के अनुसार सा रे॒ रे म प ध॒ ध सां होता है। रामामात्य और सोमनाथ जो कि चतुर्दण्डी प्रकाशिका के पूर्व के ग्रन्थकार हैं, का नाम लिए बिना चतुर्दण्डी में कहा गया है कि कुछ लोग सात विकृत स्वर मानते हैं पर चतुर्दण्डी प्रकाशिका में कुल पांच ही विकृत स्वर माने गए हैं। जिनके नाम हैं– (1) साधारण–गांधार (2) अन्तर–गांधार (3) वराली–मध्यम (4) कैशिक–निषाद (5) काकली–निषाद।

शुद्ध–गांधार जब नौवीं श्रुति से एक श्रुति ऊँचा होकर दसवीं श्रुति पर जाता है तो साधारण–गांधार हो जाता है और वही दो श्रुति और ऊँचा होकर बारहवीं श्रुति पर अन्तर–गांधार कहलाता है, गांधार के ये दो विकृत–रूप हुए। मध्यम का एक विकृत–रूप है जो कि पंचम की तीसरी श्रुति पर तथा शुद्ध–मध्यम से तीन श्रुति ऊँचा है एवं आरम्भ से सोलहवीं श्रुति पर है, इसे इन्होंने एक नया नाम वराली–मध्यम दिया। इसी श्रुति पर रामामात्य ने 'च्युत–पंचम–मध्यम' व सोमनाथ ने 'मृदु–पंचम' कहा है। शुद्ध–निषाद जो कि बाईसवीं श्रुति पर है, उससे आगे प्रथम श्रुति पर वह कैशिक–निषाद और तीसरी श्रुति पर काकली–निषाद कहलाता है।

पं. श्रीनिवास ने भी पं. अहोबल के ही अनुसार वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके स्वरों को श्रव्य के साथ–साथ दृश्य भी बना दिया, जिससे स्वरों की स्थिति में कोई संशय नहीं रहा। प्राचीन संगीत इसीलिए आज प्रचार में नहीं है क्योंकि उस समय के स्वर विश्वस्त से ज्ञात नहीं हैं। शुद्ध और विकृत कुल बारह स्वर ही हैं इस पर बल दिया गया है। एक अन्य मत के अनुसार 22 के स्थान पर 24 श्रुतियों का भी उल्लेख किया गया है। जिसमें सा, रे, म, प, ध की चार–चार और ग, नि की दो–दो श्रुतियाँ बताई गई हैं।

एक सप्तक के कुल बारह ही शुद्ध–विकृत स्वर माने हैं। जबकि अन्य समकालीन ग्रन्थों में विकृत स्वरों की संख्या अलग–अलग है। पं. श्रीनिवास ने वीणा पर स्वरों की स्थापना करके स्वर सम्बन्धी अनिश्चितता को सदा के लिए समाप्त कर दिया। जब बारह ही स्वर हैं तो सबके दो–दो भाग करके क्यों न 24 श्रुतियाँ मान ली जाएँ। 22 श्रुतियों का ही उपयोग है ये भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट है। यद्यपि 24 श्रुतियाँ पं. श्रीनिवास ने अन्य मत से दी हैं।

श्रुतियों के विषय में प्राचीन सारणा–चतुष्टयी द्वारा श्रुतियों की संख्या और जैसा उनकी समझ में आया उनकी माप आदि का वर्णन किया है। भरत व शारंगदेव ने माप के विषय में श्रुतियों को समान असमान कुछ नहीं कहा। भातखण्डे जी के विचार से प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान थी और मध्यकालीन ग्रन्थकारों की असमान। आगे चलकर पण्डित ओमकार नाथ ठाकुर, आचार्य बृहस्पति आदि ने प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों को असमान सिद्ध किया, यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकरों की श्रुतियों के माप के सम्बन्ध में अब भी मतभेद हैं पर चूँकि भातखण्डे जी की विचार धारा का प्रचार अधिक हुआ अतः इन्हीं का मत अनेक नवीन शोधों के उपरान्त भी प्रचार में है।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों में सबसे प्रमुख अन्तर यह था कि मध्यकालीन ग्रन्थकार प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह अपनी बाईस श्रुतियों को समान नहीं मानते थे। मध्यकाल के सारे ग्रन्थकार अपनी

बाईस श्रुतियों को असमान मानते थे। इस कारण उन्होंने अपने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के माध्यम से न करके वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाइयों से की है। वीणा के तार पर मध्यकालीन स्वरों की स्थापना आगे दी जाएगी।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों में एक समान विशेषता यह थी कि वे लोग अपने सात शुद्ध स्वरों को आधुनिक काफी राग के स्वरों के समान मानते थे अर्थात उनके शुद्ध स्वरों में निषाद स्वर कोमल लगते थे।

2.6 आधुनिक काल में श्रुति और स्वर

आधुनिक काल उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इस समय लिखे गए ग्रन्थों में पं. भातखण्डे के दो ग्रन्थ "अभिनव राग मंजरी" तथा "संगीत मालिका" प्रमुख हैं। पं. भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की स्थापना बाईस श्रुतियों पर प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह "चतुश्चतुश्चतुश्चैव" वाले प्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार की है। परन्तु उन्होंने अपने शुद्ध स्वरों को प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह उनकी अन्तिम श्रुति पर न रखकर उनको प्रथम श्रुति पर स्थापित किया है। कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वर को उसकी अन्तिम श्रुति पर रखते थे, पं.भातखण्डे ने अपने शुद्ध स्वर को उसकी पहली श्रुति रखा है। इस प्रकार पं. भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों को नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित किया है– सा–पहली श्रुति पर, रे–पाँचवीं श्रुति पर, ग–आठवीं श्रुति पर, म–दसवीं श्रुति पर, प–चौदहवीं श्रुति पर, ध–अठारहवीं श्रुति पर और नि–इक्कसवीं श्रुति पर।

पं. भातखण्डे ने 7 शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 5 विकृत स्वर मानें हैं और इस प्रकार कुल मिलाकर एक सप्तक में बारह स्वर माने हैं। यही बारह स्वर आज हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रयोग किए जाते हैं। नीचे पं. भातखण्डे के स्वरों को बाईस श्रुतियों पर स्थापित किया गया है। 22 श्रुतियों में स्वरों की स्थापना को लेकर एक नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन षड्ज–ग्राम की श्रुतियों की व्यवस्था को बिना परिवर्तित किए भातखण्डे जी ने स्वर की अन्तिम श्रुति के स्थान पर स्वरों को प्रथम पर स्थापित करके बिलावल को ही प्राचीन आधार दिया।

स्वर – शुद्ध स्वर तो प्राचीन काल से आज तक पूरी दुनिया में सात ही माने जाते हैं। विकृत स्वरों को लेकर अनेक मत हैं, जैसे भरत ने दो, शारंगदेव ने बारह, अहोबल ने बाईस, लोचन ने दस, रामामात्य ने सात और व्यंकटमुखी ने केवल पाँच विकृत–स्वर माने। भातखण्डे जी पर व्यंकटमुखी का प्रभाव अनेक बिन्दुओं में दृष्टिगोचर होता है। अतः उन्होने लक्ष्य–संगीत में सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर मिलाकर कुल बारह स्वरों को आधार प्रदान किया।

श्रुतियों में स्वरों की व्यवस्था के विषय में प्राचीन मत का उल्लेख करते हुए उसके विपरीत क्रम की चर्चा की गई है। प्राचीन क्रम में चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्रहवी, बीसवीं और बाईसवीं श्रुतियों पर षड्ज, ऋषभ आदि स्वर स्थापित किए गए हैं लेकिन वर्तमान में हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में स्वरों को विपरीत–क्रम से संस्थापित करने का उल्लेख है। जैसे षड्ज की चार श्रुतियाँ हैं तो पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ(ऋषभ की तीन श्रुतियों में से प्रथम पर, परन्तु आरम्भ से गिनने पर पाँचवीं), आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत, इक्कीसवीं पर निषाद स्वर स्थापित किए गए हैं।

विकृत–स्वर – स्वर जब अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा या नीचा होता है तो उसे विकृत कहा गया है। मध्यम अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा हो तो उसे तीव्र–विकृत तथा ऋषभ, गांधार, धैवत तथा निषाद अपनी

शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल–विकृत कहे गए हैं। इस प्रकार सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों को मिलाकर कुल बारह स्वरों का उल्लेख है।

वीणा पर स्वरों की स्थापना – वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना का विचार पं. भातखण्डे ने दिया है। ग्रन्थकार का मत है कि स्वर कान के साथ–साथ आँख का भी विषय हो जाए जिससे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टीकरण हो सकेगा, इसलिए वीणा पर स्वरों की स्थापना की गई है।

वीणा पर स्वरों की स्थापना करते समय पं. भातखण्डे का कथन है कि 'पूर्व' मेरू (Bridge) और 'अन्त्य' मेरू के ठीक मध्य में तार–षड्ज, तार–षड्ज और पूर्व मेरू के मध्य अतितार–षड्ज, अन्तय मेरू और तार–षड्ज के मध्य शुद्ध–मध्यम, अन्तय मेरू और तार–षड्ज के तीन भाग करके अन्त्य मेरू की ओर से दूसरे भाग पर पंचम, अन्त्य मेरू और पंचम के तीन भाग करके अन्त्य मेरू की ओर से प्रथम भाग पर ऋषभ, पंचम और तार–षड्ज के मध्य धैवत है जिसे ऋषभ से षड्ज–पंचम भाव से संवादी होना आवश्यक है। अन्त्य मेरू और धैवत के मध्य तीव्र–गांधार से षड्ज–पंचम भाव से निषाद प्राप्त करें।

उन्होंने विकृत स्वरों के लिए इस प्रकार कहा है कि मेरू और ऋषभ के मध्य कोमल–ऋषभ, मेरू और पंचम के मध्य कोमल–गांधार, मध्यम और पंचम के बीच तीव्र–मध्यम, कोमल–ऋषभ से षड्ज–पंचम भाव से संवाद करता हुआ कोमल–धैवत, पंचम और तार–षड्ज के तीन भाग करके पंचम की ओर से दूसरे भाग पर कोमल–निषाद कहा है।

आधुनिक ग्रन्थकार अपनी 22 श्रुतियाँ मध्यकालीन ग्रन्थकारों की तरह असमान मानते हैं। भातखण्डे जी ने भी स्वरों की स्थापना वीणा के तार की लम्बाई पर विभिन्न नापों से की है। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों की वीणा पर स्वरों की स्थापना मध्यकालीन ग्रन्थकारों की स्थापना से कुछ भिन्न है। आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट के समान मानते हैं अर्थात उनके शुद्ध सप्तक में गांधार तथा निषाद स्वर प्राचीन व मध्यकालीन स्वरों की तरह कोमल नहीं हैं।

श्रुति.सं.	श्रुति का नाम	आधुनिक शुद्ध तथा विकृत बारह स्वरों की स्थापना
1	तीव्रा	(1) षड्ज
2	कुमुद्वती	
3	मन्द्रा	(2) कोमल ऋषभ
4	छंदोवती	
5	दयावती	
6	रंजनी	(3) शुद्ध ऋषभ
7	रक्तिका	
8	रौद्री	(4) कोमल गांधार
9	क्रोधा	(5) शुद्ध गांधार
10	वज्रिका	
11	प्रसारिणी	(6) शुद्ध मध्यम
12	प्रीति	
13	मार्जनी	(7) तीव्र मध्यम
14	क्षिति	
15	रक्ता	
16	संदीपनी	(8) पंचम

17	आलापिनी	
18	मदन्ती	(9) कोमल धैवत
19	रोहिणी	(10) शुद्ध धैवत
20	रम्या	
21	ऊग्रा	(11) कोमल निषाद
22	क्षोभिणी	(12) शुद्ध निषाद

आधुनिक ग्रन्थकारों में एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये लोग पाश्चात्य संगीतज्ञों की तरह अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों को विभिन्न आन्दोलन संख्याओं के आधार पर स्थापित करते हैं, जबकि प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों को यह साधन मालूम नहीं था। स्वर तथा आन्दोलन संख्या के विषय को आगे स्पष्ट किया जाएगा।

संक्षेप में ऊपर दिए गए तीनों कालों के श्रुति–स्वर विभाजन के अन्तर को हम इस प्रकार समझ सकते हैंः–

(1) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते थे। अर्थात् सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–तेरहवीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाईसवीं श्रुति पर। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को उनकी पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं अर्थात् सा–पहली पर, रे–पाँचवीं पर, ग–आठवीं पर, म–दसवीं पर, प–चौदहवीं पर, ध–अठारहवीं पर और नि–इक्कीसवीं श्रुति पर।

(2) प्राचीन ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी आपस की दो श्रुतियों का अन्तर एक प्रमाण बन गया था और इस प्रकार वह किसी भी स्वर को श्रुति द्वारा नाप लिया करते थे। परन्तु मध्यकालीन तथा आधुनिक ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान नहीं मानते। उन्होंने स्वरों की स्थापना श्रुतियों के नाप से न करके वीणा के तार की लम्बाई पर विभिन्न नापों से की है।

(3) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वर सप्तक को आधुनिक काफी थाट के समान मानते थे अर्थात् उनके शुद्ध स्वर में गांधार तथा निषाद स्वर कोमल लगते थे। परन्तु आधुनिक ग्रन्थकार बिलावल थाट को अपना शुद्ध स्वर सप्तक मानते हैं। उनके सात शुद्ध स्वरों में गांधार तथा निषाद स्वर प्राचीन तथा मध्यकालीन स्वरों की तरह कोमल नहीं है।

(4) प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों को स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालने का ज्ञान नहीं था। परन्तु आधुनिक काल के ग्रन्थकारों को पाश्चात्य संगीतज्ञों की तरह स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालने का ज्ञान था।

<u>प्राचीन ग्रन्थकारों की समान श्रुतियाँ (सारणा चतुष्टयी)</u> – जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी बाईस श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पास–पास की दो श्रुतियों का अन्तर एक प्रमाण अथवा निश्चित नाप था जो सप्तक की प्रत्येक पास की दो श्रुतियों के बीच में होता था। अर्थात् उनकी पहली और दूसरी श्रुति में जो अन्तर था, वही तीसरी, चौथी और पांचवीं आदि श्रुतियों में था। प्राचीन काल के दो ग्रन्थ प्रमुख हैं–एक भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' तथा दूसरा शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर'। भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में श्रुति चर्चा करते हुए 'सारणा चतुष्टयी' में एक प्रयोग

लिखा है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे। इस प्रयोग में 'प्रमाण श्रुति' का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

2.7 दक्षिण भारतीय संगीत का संक्षिप्त परिचय

दक्षिण भारतीय संगीत का उद्भव एवं विकास – नाट्यशास्त्र से लेकर संगीतराज ग्रन्थों के अध्ययन से यही पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत में एक ही संगीत पद्धति प्रचलित थी। नाट्यशास्त्र में किसी भी विशेष स्थान से सम्बन्धित सांगीतिक संस्कृति का वर्णन नहीं है, जिसे दक्षिण भारतीय संगीत या कर्नाटक संगीत माना जाए। कुछ विद्वानों के अनुसार संगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय तक दक्षिण भारतीय संगीत के पृथक रूप का प्रारम्भ हो गया था। कल्लिनाथ द्वारा विभिन्न संज्ञाओं जैसे पंचश्रुतिक, षडश्रुतिक, जन्य–जनक मेल आदि का प्रयोग किया जाना उस समय में दक्षिण भारतीय संगीत के अस्तित्व को दर्शाता है। संगीतरत्नाकर के काल में दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के बीज अंकुरित हो चुके थे। संगीत की दो प्रणालियाँ प्रचलित है, उनमें से एक को कर्नाटकी और दूसरी को हिन्दुस्तानी प्रणाली कहा जाता है। मद्रास के आस–पास के क्षेत्र में जो संगीत प्रणाली प्रसिद्ध है उसको कर्नाटकी कहा जाता है तथा शेष भारत में सर्वत्र हिन्दुस्तानी प्रणाली प्रचलित है।''

प्राचीन काल से लेकर 1300 ई0 तक पूरे भारत में एक ही शास्त्रीय संगीत का प्रचलन था। मुसलमानों के आने के पश्चात भारतीय संस्कृति में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा। भारत का उत्तरी क्षेत्र मुस्लिम(फारस, ईरान इत्यादि) संस्कृति, संगीत, कला आदि से अत्यधिक प्रभावित हुआ। जिसका परिणाम यह हुआ कि जो संगीत ईश्वर की आराधना के लिए किया जाता है वह शासकों को खुश करने एवं भौतिक साधनों की प्राप्ति के साधन के रूप में प्रयोग होने लगा। दक्षिणी क्षेत्र मुसलमानों के आक्रमण से बचा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ का संगीत बाह्य संस्कृति से अप्रभावित रहा। इसके परिणामस्वरूप ही भारतीय संगीत में दो अलग–अलग शैली उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत पद्धति का निर्माण हुआ।''

दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर – दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध तथा विकृत स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर हैं। 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं तथा शेष चल स्वर कहलाते हैं। चल स्वर जब अपने स्थान से ऊपर या नीचे हों तो उन्हें क्रमशः तीव्र या शुद्ध स्वर कहते हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत के समान ही है। दक्षिण भारतीय संगीत में विकृत स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत से अलग है तथा इनके नामों में भी भिन्नता है। दक्षिण भारतीय संगीत में स्वर की शुद्ध स्थिति पहले मानी जाती है तथा शुद्ध स्वर के बाद विकृत स्वर आते हैं, जो प्राचीन भारतीय संगीत परम्परा के समान है। दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों की स्थिति निम्न तालिका से समझी जा सकती है।

उत्तर भारतीय स्वर		दक्षिण भारतीय स्वर
1. षड्ज	–	षड्ज
2. कोमल ऋषभ	–	शुद्ध ऋषभ
3. शुद्ध ऋषभ	–	चतुःश्रुति ऋषभ या शुद्ध गान्धार
4. कोमल गान्धार	–	षट्श्रुति ऋषभ या साधारण गान्धार
5. शुद्ध गान्धार	–	अन्तर गान्धार

6. शुद्ध मध्यम	–	शुद्ध मध्यम
7. तीव्र मध्यम	–	प्रति मध्यम
8. पंचम	–	पंचम
9. कोमल धैवत	–	शुद्ध धैवत
10.शुद्ध धैवत	–	चतुःश्रुति धैवत या शुद्ध निषाद
11.कोमल निषाद	–	षट्श्रुति धैवत या कैशिक निषाद
12.शुद्ध निषाद	–	काकलि निषाद

दक्षिण भारतीय संगीत के थाट – उत्तर भारतीय संगीत में जिसे 'थाट' कहते हैं, दक्षिण भारतीय संगीत में उसे 'मेल' कहा जाता है। मेल के आधार पर राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में कुल 72 मेल माने गए हैं। दक्षिण भारतीय पद्धति में एक ही मेल(थाट) में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग एक साथ किया जा सकता है, परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में यह प्रयोग मान्य नहीं है। उत्तर भारतीय संगीत के दस थाटों के समकक्ष दक्षिण भारतीय संगीत के मेल निम्न तालिका में वर्णित हैं :–

हिन्दुस्तानी थाट		मेलकर्ता
1. भैरवी	–	हनुमत तोड़ी
2. भैरव	–	मायामालवगौड
3. आसावरी	–	नटभैरवी
4. काफी	–	खरहरपिया
5. खमाज	–	हरिकाम्भोजी
6. बिलावल	–	धीरशंकराभरणम्
7. तोड़ी	–	शुभपंतुवराली
8. पूर्वी	–	कामवर्धिनी
9. मारवा	–	गमनप्रिया
10.कल्याण	–	मेचकल्याणी

दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाएं :–

1. **पदम्** – दक्षिण भारतीय पद्धति में पदम् का विशेष स्थान है। पदम् में मुख्य रूप से तीन पंक्तियाँ होती है–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम्। पदम् के रचियताओं में पुरन्दरदास, कनकदास, जगन्नदास, तथा मुट्टु ताण्डव का नाम प्रमुख है। 17वीं सदी के क्षेत्रज्ञ के पदम् अत्यधिक प्रचलित हुए। पदम् के अन्य रचनाकारों में तंजौर के नरेश शाहजी(मराठी व तेलगु भाषा में), स्वाती तिरूनल महाराज(संस्कृत, तेलगू व मलयालम भाषा में) व सुब्बाराय अय्यर का नाम आता है।

2. **कीर्तन/कीर्तनम्** – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की महत्वपूर्ण रचनाओं में कीर्तन का नाम आता है। कीर्तन भगवान की उपासना सम्बन्धित रचना है जो राग व ताल मे निबद्व होती है। इसके तीन अंग माने गए हैं–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् जो प्राचीन प्रबन्ध के अवयव क्रमशः ध्रुव, अंतरा व आभोग के समान है। कुछ कीर्तन अनुपल्लवी रहित भी होते हैं। कीर्तन में एक से अधिक चरण भी हो सकते हैं। 14वीं–15वीं शताब्दी के तालपाकम्, कीर्तन के प्रथम रचनाकार थे। अन्य रचियताओं में श्री त्यागराज, मुतुस्वामी दीक्षितार, श्यामाशास्त्री, पुरून्दरदास, स्वाति तिरूनाल आदि का नाम आता है।

3. कृति – दक्षिण भारतीय संगीत की रचना कृति, कीर्तन का विकसित रूप मानी जाती है। कलात्मक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी उत्पत्ति 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी गई है। कृति में मुख्यतः श्रृंगार, करूण व भक्ति रस की प्रधानता होती है। इसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता होती है। यह प्रचलित व अप्रचलित दोनों प्रकार के रागों में निबद्ध मिलती है तथा गाई जाती है। कृति में स्वर का प्रमुख स्थान है तथा साहित्य गौण रहता है। इसके तीनों अंगों–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् का प्रयोग क्रम से किया जाता है।

4. वर्णम् – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की रचनाओं में वर्णम् का प्रमुख स्थान है। कर्नाटक संगीत में राग स्वरूप निर्धारण में इसका ज्ञान आवश्यक है। कर्नाटक संगीत में गायक व वादक के लिए वर्णम् की शिक्षा अनिवार्य मानी गई है। राग स्वरूप के निर्धारण व स्पष्टीकरण हेतु हर राग को स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण में रचने के कारण इसको वर्णम् नाम दिया गया। सभागान और वादन में सर्वप्रथम वर्णम् ही गाया या बजाया जाता है। वर्णम् के दो भाग हैं – 1. पूर्वांग 2. उत्तरांग।

5. जावली – यह दक्षिण के जावल शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है श्रृंगारमय गीत। यह आधुनिक गीत का प्रकार है। जावल मुख्यतः श्रृंगार रस प्रधान होती है। इसका विषय मुख्यतः नायक व नायिका के प्रेम सम्बन्धों पर आधारित रहता है। इसका इतिहास 100–200 वर्ष पूर्व से मिलता है। यह उत्तर भारत की गायन शैली ठुमरी से मिलती जुलती है। जावली में भी अन्य रचनाओं की भाँति पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् अंग होते हैं। यह मुख्यतः परज, खमाज, काफी, विहाग, झिंझोटी आदि रागों में गाई जाती है तथा इसके साथ प्रायः आदि, रूपक, चापु आदि तालों का प्रयोग किया जाता है। इसके रचनाकरों में स्वाति तिरूनाल, पट्टणम् सुब्रह्मणयम, श्रीनिवास अय्यंगार आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

6. तिल्लाना – दक्षिण भारतीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियों में तिल्लाना का अपना अलग स्थान है। यह उत्तर भारतीय संगीत के तराना के समकक्ष है। भारतीय संगीत पद्धति के तराना नामक गीत का स्वरूप दक्षिणात्य संगीत का तिल्लाना है। इसका प्रयोग दक्षिण भारतीय संगीत में नृत्य के साथ भी किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से तोम, तनन, न, दे, धिन् जैसे निरर्थक अक्षर, सोलकट्टु अर्थात् पाटुक्षर(तरिकिट) और स्वर तथा चरणम् में पद रहता है।

7. रागमालिका – ऐसी रचना जिसमें भिन्न–भिन्न प्रकृति के रागों का मिश्रण हो उसे रागमालिका कहते हैं। यह एक लम्बी रचना है जिसे भिन्न–भिन्न रागों में अलग–अलग खण्ड़ों में गाया जाता है। इसमें एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि समान स्वरों के रागों को पास ना रखा जाए। रागमालिका में प्रयुक्त ताल शुरू से लेकर अन्त तक एक ही रहता है। इसके रचयिताओं को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह किन रागों का चुनाव करें व उनका क्रम क्या रखा जाए। इसके भी तीन अंग पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् होते हैं।

दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के प्रमुख वाद्य – प्राचीनकाल में उत्तर व दक्षिण संगीत पद्धतियों में वाद्य समान ही थे किन्तु बाद में अलग वातावरण, विभिन्न गायन शैलियों व वाद्यों के विकास के साथ–साथ इनमें भी परिवर्तन होने लगे, इस कारण कुछ नए वाद्य भी अस्तित्व में आए। आज दोनों पद्धतियों में वाद्यों, उनकी बनावट व उनकी वादन शैलियों में काफी अन्तर आ गया है।

1. **बेला वाद्य** – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में बेला स्वतन्त्र व संगत वाद्य दोनों के रूप में प्रमुख स्थान रखता है। गायन में इसका विशेष प्रयोग आलाप करते समय व तान आदि क्रियाओं का अनुकरण करने में किया जाता है।

2. **दक्षिणात्य वीणा** – वीणा का भी दक्षिण भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग स्वतन्त्र वादन व संगत वाद्य दोनों रूप में किया जाता है। प्राचीन काल से ही वीणा का संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण भारतीय संगीत में अभी भी वीणा अत्यन्त लोकप्रिय व विकसित रूप में प्रचलित है। कर्नाटक पद्धति में इसके लोकप्रिय होने के कारण इसको समय के अनुसार लगातार विकसित किया जाता है।

3. **नागस्वरम् या तूर्य** – कर्नाटक संगीत के वाद्य में नागस्वरम या तूर्य का अपना स्थान है। देवालयों में, मांगलिक कार्यक्रमों में, उत्सव आदि अवसरों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह आच्चा लकड़ी का बना होता है जिसकी लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ होती है। इसमें सात स्वरों के रन्ध्र होते हैं जो चौथाई अंगुल व्यास के बनते हैं। मुख्य नागस्वरम् के अलावा एक अन्य नागस्वरम् का प्रयोग स्वर देने के लिए किया जाता है।

4. **मृदंगम्** – यह कर्नाटकी संगीत का प्रमुख ताल वाद्य है। मृदंगम् में पूड़ी का चमड़ा उत्तर भारतीय पखावज की अपेक्षा मोटा होता है। उत्तर भारत मृदंग की किनार का चमड़ा एक इंच व्यास का रखा जाता है, जबकि दक्षिण भारतीय मृदंगम् में किनारे का यह चमड़ा स्याही के स्थान को छोड़कर पूड़ी का समस्त स्थान घेरता है। इस तरह मृदंगम् में चाँट और स्याही के भाग दिखाई देते हैं जबकि पखावज में पूड़ी, चाँट, लव तथा स्याही इन तीनों भागों में दिखाई देती है।

दक्षिण भारतीय ताल पद्धति – कर्नाटक या दक्षिण ताल पद्धति में 35 तालों का प्रयोग किया जाता है। कर्नाटक ताल पद्धति में सात मुख्य ताल हैं। संगीत के क्रियात्मक पक्ष में तालों की अपर्याप्यता को देखते हुए इन तालों में व्यवहारित अंगों को दुगुना, चौगुना, पंचगुना, छःगुना और नौगुना करके इन सात तालों से ही पैंतीस तालों का निर्माण किया गया है। दक्षिण ताल पद्धति में अंग का बहुत महत्व है। अंग 6 प्रकार के होते हैं। तालों के स्वरूप को प्रकट करने व ताल लिखने या प्रदर्शित करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जो काम उत्तर भारतीय ताल पद्धति में विभागों का है वही दक्षिण में अंगों का है। निम्न तालिका से आप अंगों को समझ सकेंगेः–

क्रम	अंग नाम	मात्रा	चिन्ह
1	अणुद्रुत	1	ु
2	द्रुत	2	0
3	लघु	4	।
4	गुरू	8	ऽ या 8
5	प्लुत	12	3 या 8
6	काकपद	16	+

दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की समानताएं :–

1. दोनों पद्धतियों में एक सप्तक के अन्तर्गत 22 श्रुतियां और 12 शुद्व और विकृत स्वर होते हैं। स्वर स्थानों में भी लगभग समानता है।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में मेलराग वर्गीकरण प्रचलित है तथा उत्तर भारत में थाट–राग वर्गीकरण। मेल व थाट दोनों शब्दों का मतलब एक ही है। दोनों पद्धतियों में थाट/मेल को जनक तथा राग को जन्य माना गया है। थाट राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 भातखंडे जी को तथा मेल राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है।
3. दोनों पद्धतियों की कुछ तालें भी समान हैं। जैसे उत्तर भारत की चारताल व एकताल, दक्षिण की चतस्त्र जाति की अठ ताल के समकक्ष है।
4. दोनों पद्धतियों में विभाग की प्रथम मात्रा पर ताली देने का प्रावधान है।
5. दोनों पद्धतियों में कुछ राग भी समान हैं। जैसे हंसध्वनि, चारूकेशी, नारायणी, आभोगी, किरवाणी, कलावती आदि। खमाज व विहाग दक्षिण में उत्तर भारत के समान ही गाए जाते हैं। हिंडौल राग उत्तर के मालकौंस के समकक्ष है।
6. दोनों पद्धतियों की कुछ गायन शैलियों में भी समानता पाई जाती है। जैसे तराना–तिल्लाना, ठुमरी–जावलि, ख्याल–वर्णम् आदि।

दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की असमानताएं :–

1. दक्षिण में स्वर के कम्पन पर तथा उत्तर में स्वर की स्थिरता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. दक्षिण में एक ही स्वर को दो नामों से भी जाना जाता है, जैसे चतुःश्रुति ऋषभ, साधारण गांधार, चतुःश्रुति धैवत और कौशिक निषाद को क्रमशः शुद्ध गान्धार, षट्श्रुति ऋषभ, शुद्ध निषाद और षट्श्रुति धैवत जैसे अन्य नामों से भी जाना जाता है। उत्तर में स्वरों के दो नाम नहीं होते।
3. दक्षिण में बन्दिशों में परिवर्तन नहीं किया जाता है। बंदिश की मौलिकता पर विशेष बल दिया जाता है। उत्तर में रचनाओं में इतना बंधन नहीं है। गायक रचना में परिवर्तन कर सकता है।
4. उत्तर में बड़े ख्याल व छोटे ख्याल में रचना(साहित्य) एक से दो पंक्तियों का होता है तथा गायक उसी पर अधिक समय तक राग–विस्तार करता रहता है। दक्षिण की कृतियों में पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् होते हैं तथा इनमें उत्तर की अपेक्षा साहित्य अधिक रहता है।
5. एक मतानुसर कर्नाटक संगीत में विलम्बित लय नहीं होती। रचनाएं प्रायः मध्य व द्रुत लय में होती हैं।
6. उत्तर में 10 थाट माने गए हैं तथा दक्षिण में 72 मेल माने गए हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. श्रुति की परिभाषा देते हुए संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. स्वर एवं श्रुति में क्या अन्तर है? संक्षेप में बताइए।
3. भरत कृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध स्वरों को बताइए।
4. प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचलन था।
2. कवि लोचन ने राग तरंगिनी में 20 स्वरों का वर्णन किया है।

3. आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट समान मानते हैं।
4. पाणिनी के समय तक सात स्वरों का प्रचार नहीं हुआ था।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. प्राचीन समय में सा स्वर की उत्पत्ति _____पक्षी से मानी गई है।
2. पं. शारंगदेव ने बारहवीं श्रुति पर _____स्वर स्थापित किया है।
3. ऋषभ एवं धैवत स्वरों की श्रुति संख्या _____है।
4. भरत ने सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर–गान्धार एवं _____विकृत स्वर माने हैं।
5. दक्षिण का ..... थाट भारतीय संगीत के तोड़ी थाट के समकक्ष माना जाता है।

2.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में जान चुके होंगे। प्राचीन काल से स्वरों का अस्तित्व सामने आता है। स्वरों का सम्बन्ध अनेक पशु–पक्षियों एवं देवी–देवताओं से भी जोड़ा गया है। सभी ने श्रुतियों की संख्या 22 मानी है परन्तु उनमें स्वरों की स्थापना में भिन्नता है। विकृत स्वरों की संख्या में भी विद्वानों के मत समान नहीं हैं। प्राचीन विद्वानों ने सप्तक के बराबर 22 भाग कर 22 श्रुतियों में विभाजन करके स्वरों की स्थापना की है परन्तु मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों को समान न मानते हुए वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाईयों में स्वरों की स्थापना की है। प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी अंतिम श्रुति में स्थान दिया है परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी पहली श्रुति पर स्थापित किया है। विभिन्न कालों के ग्रन्थकारों के माध्यम से स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में उस काल की स्थिति एवं संगीत में प्रयुक्त स्वरों का विषद ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आप श्रुति एवं स्वर से संबंधित विभिन्न पहलुओं से परिचित हो चुके होंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट, रचनाओं, वाद्यों एवं ताल पद्धति से भी परिचित हो चुके होंगे।

2.9 शब्दावली

1. द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।
2. प्रबन्ध – प्राचीनकाल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक आदि आते थे। प्रबन्ध की चार धातुएँ उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग हैं।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. मयूर
2. अन्तर गान्धार

3. तीन
4. काकली निषाद
5. शुभपंतुवराली

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर,(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु,(2010), भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा,(2004), *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण,(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त,(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति,(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण,(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वर एवं श्रुति का परस्पर सम्बन्ध बताते हुए विस्तार से प्राचीन कालीन विद्वानों के अनुसार इनकी व्याख्या कीजिए।
2. मध्यकाल एवं आधुनिक काल के विद्वानों के अनुसार श्रुति एवं स्वर की व्याख्या करते हुए परस्पर विश्लेषण कीजिए।
3. दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट एवं रचनाओं के विषय में बताइए।

इकाई 3 दक्षिण भारतीय संगीत का परिचय

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 दक्षिण भारतीय संगीत का परिचय
3.3.1 दक्षिण भारतीय संगीत का उद्भव एवं विकास
3.4 दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर
3.5 दक्षिण भारतीय संगीत के थाट
3.6 दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाएं
3.6.1 पदम् 3.6.2 कीर्तन/कीर्तनम
3.6.3 कृति 3.6.4 वर्णम्
3.6.5 जावली 3.6.6 तिल्लाना
3.6.7 रागमालिका
3.7 दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के प्रमुख वाद्य
3.7.1 बेला वाद्य 3.7.2 दक्षिणात्य वीणा
3.7.3 नागस्वरम् या तूर्य 3.7.4 मृदंगम्
3.8 दक्षिण भारतीय ताल पद्धति
3.9 दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की समानताएँ
3.10 दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की असमानताएं
3.11 अभ्यास प्रश्न
3.12 सारांश
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0आई0–301) की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय संगीत के इतिहास से परिचित हो चुके होंगे। आप थाट पद्धति को भी जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसमें प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान विद्वानों के अनुसार स्वर एवं श्रुति की स्थिति. एवं स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। इसमें विद्वानों के मतों को भी बताया गया है। इसमें बताया गया है कि संगीत में श्रुति एवं स्वर का क्या अस्तित्व है तथा श्रुति एवं स्वरों की संख्या एवं स्वरूप क्या है। संगीत में स्वर की परम्परा प्राचीन समय से किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। इस इकाई में आपको दक्षिण भारतीय संगीत के विषय में भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप श्रुतियों पर स्वर स्थापना (प्राचीन से वर्तमान तक) को समझ सकेंगे। साथ ही स्वर की शुद्ध एवं विकृत स्थिति एवं उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को भी आप इस इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी समझ सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- बता सकेंगे कि भारतीय संगीत के मूल आधार स्वर को प्राचीन से आधुनिक काल तक स्थापित करने हेतु क्या प्रणाली रही है।
- समझ सकेंगे कि शुद्ध एवं विकृत स्वरों में परस्पर क्या सम्बन्ध रहा है तथा सप्तक की 22 श्रुतियों में इसकी स्थापना का मुख्य आधार क्या रहा है।
- समझा सकेंगे कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के प्रसिद्ध विद्धानों के साथ–साथ समकालीन विद्धानों के स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में क्या मत हैं।
- बता सकेंगे कि विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वर एवं श्रुति का सम्बन्ध किस प्रकार अन्य से स्थापित किया गया है।
- आप दक्षिण भारतीय संगीत को भी जान सकेंगे।

3.3 दक्षिण भारतीय संगीत का परिचय

दक्षिण भारतीय संगीत, जिसे सामान्यतः कर्नाटक संगीत के रूप में जाना जाता है, भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो मुख्य परंपराओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह संगीत शैली मुख्य रूप से तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना जैसे दक्षिण भारतीय राज्यों में विकसित होकर समृद्ध हुई है। इसकी विशिष्ट पहचान गहरी आध्यात्मिकता, सृजनशीलता और उच्च कोटि के तकनीकी कौशल में दिखाई देती है। कर्नाटक संगीत केवल एक कला रूप नहीं है, बल्कि दक्षिण भारतीय सांस्कृतिक विरासत और भक्ति–भावना का अभिन्न हिस्सा माना जाता है।

3.3.1 दक्षिण भारतीय संगीत का उद्भव एवं विकास– नाट्यशास्त्र से लेकर संगीतराज ग्रन्थों के अध्ययन से यही पता चलता है कि सम्पूर्ण भारत में एक ही संगीत पद्धति प्रचलित थी। नाट्यशास्त्र में किसी भी विशेष स्थान से सम्बन्धित सांगीतिक संस्कृति का वर्णन नहीं है, जिसे दक्षिण भारतीय संगीत या कर्नाटक संगीत माना जाए। कुछ विद्वानों के अनुसार संगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय तक दक्षिण भारतीय संगीत के पृथक रूप का प्रारम्भ हो गया था। कल्लिनाथ द्वारा विभिन्न संज्ञाओं जैसे पंचश्रुतिक, षडश्रुतिक, जन्य–जनक मेल आदि का प्रयोग किया जाना उस समय में दक्षिण भारतीय संगीत के अस्तित्व को दर्शाता है। संगीतरत्नाकर के काल में दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के बीज अंकुरित हो चुके थे। संगीत की दो प्रणालियाँ प्रचलित है, उनमें से एक को कर्नाटकी और दूसरी को हिन्दुस्तानी प्रणाली कहा जाता है। मद्रास के आस–पास के क्षेत्र में जो संगीत प्रणाली प्रसिद्ध है उसको कर्नाटकी कहा जाता है तथा शेष भारत में सर्वत्र हिन्दुस्तानी प्रणाली प्रचलित है।''

प्राचीन काल से लेकर 1300 ई0 तक पूरे भारत में एक ही शास्त्रीय संगीत का प्रचलन था। मुसलमानों के आने के पश्चात भारतीय संस्कृति में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा। भारत का उत्तरी क्षेत्र मुस्लिम(फारस, ईरान इत्यादि) संस्कृति, संगीत, कला आदि से अत्यधिक प्रभावित हुआ। जिसका परिणाम यह हुआ कि जो संगीत ईश्वर की आराधना के लिए किया जाता है वह शासकों को खुश करने एवं भौतिक साधनों की प्राप्ति के साधन के रूप में प्रयोग होने लगा। दक्षिणी क्षेत्र मुसलमानों के आक्रमण से बचा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ का संगीत बाह्य संस्कृति से अप्रभावित रहा। इसके परिणामस्वरूप ही भारतीय संगीत में दो अलग–अलग शैली उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत पद्धति का निर्माण हुआ।''

3.4 दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर – दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध तथा विकृत स्वर मिलाकर कुल 12 स्वर हैं। 'सा' और 'प' अचल स्वर हैं तथा शेष चल स्वर कहलाते हैं। चल स्वर जब अपने स्थान से ऊपर या नीचे हों तो उन्हें क्रमशः तीव्र या शुद्ध स्वर कहते हैं। दक्षिण भारतीय संगीत में शुद्ध स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत के समान ही है। दक्षिण भारतीय संगीत में विकृत स्वरों की स्थिति उत्तर भारतीय संगीत से अलग है तथा इनके नामों में भी भिन्नता है। दक्षिण भारतीय संगीत में स्वर की शुद्ध स्थिति पहले मानी जाती है तथा शुद्ध स्वर के बाद विकृत स्वर आते हैं, जो प्राचीन भारतीय संगीत परम्परा के समान है। दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों की स्थिति निम्न तालिका से समझी जा सकती है।

उत्तर भारतीय स्वर		दक्षिण भारतीय स्वर
1. षड्ज	–	षड्ज
2. कोमल ऋषभ	–	शुद्ध ऋषभ
3. शुद्ध ऋषभ	–	चतुःश्रुति ऋषभ या शुद्ध गान्धार
4. कोमल गान्धार	–	षट्श्रुति ऋषभ या साधारण गान्धार
5. शुद्ध गान्धार	–	अन्तर गान्धार
6. शुद्ध मध्यम	–	शुद्ध मध्यम
7. तीव्र मध्यम	–	प्रति मध्यम
8. पंचम	–	पंचम
9. कोमल धैवत	–	शुद्ध धैवत
10.शुद्ध धैवत	–	चतुःश्रुति धैवत या शुद्ध निषाद
11.कोमल निषाद	–	षट्श्रुति धैवत या कैशिक निषाद
12.शुद्ध निषाद	–	काकलि निषाद

3.5 दक्षिण भारतीय संगीत के थाट – उत्तर भारतीय संगीत में जिसे 'थाट' कहते हैं, दक्षिण भारतीय संगीत में उसे 'मेल' कहा जाता है। मेल के आधार पर राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में कुल 72 मेल माने गए हैं। दक्षिण भारतीय पद्धति में एक ही मेल(थाट) में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग एक साथ किया जा सकता है, परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में यह प्रयोग मान्य नहीं है। उत्तर भारतीय संगीत के दस थाटों के समकक्ष दक्षिण भारतीय संगीत के मेल निम्न तालिका में वर्णित हैं :–

हिन्दुस्तानी थाट		मेलकर्ता
1. भैरवी	–	हनुमत तोड़ी
2. भैरव	–	मायामालवगौड

3. आसावरी	–	नटभैरवी
4. काफी	–	खरहरपिया
5. खमाज	–	हरिकाम्भोजी
6. बिलावल	–	धीरशंकराभरणम्
7. तोड़ी	–	शुभपंतुवराली
8. पूर्वी	–	कामवर्धिनी
9. मारवा	–	गमनप्रिया
10.कल्याण	–	मेचकल्याणी

3.6 दक्षिण भारतीय संगीत की रचनाएं :–

3.6.1 पदम् – दक्षिण भारतीय पद्धति में पदम् का विशेष स्थान है। पदम् में मुख्य रूप से तीन पंक्तियाँ होती है–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम्। पदम् के रचियताओं में पुरन्दरदास, कनकदास, जगन्नदास, तथा मुट्टु ताण्डव का नाम प्रमुख है। 17वीं सदी के क्षेत्रज्ञ के पदम् अत्यधिक प्रचलित हुए। पदम् के अन्य रचनाकारों में तंजौर के नरेश शाहजी(मराठी व तेलगु भाषा में), स्वाती तिरूनल महाराज(संस्कृत, तेलगू व मलयालम भाषा में) व सुब्बाराय अय्यर का नाम आता है।

3.6.2 कीर्तन/कीर्तनम् – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की महत्वपूर्ण रचनाओं में कीर्तन का नाम आता है। कीर्तन भगवान की उपासना सम्बन्धित रचना है जो राग व ताल मे निबद्व होती है। इसके तीन अंग माने गए हैं–पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् जो प्राचीन प्रबन्ध के अवयव क्रमशः ध्रुव, अंतरा व आभोग के समान है। कुछ कीर्तन अनुपल्लवी रहित भी होते हैं। कीर्तन में एक से अधिक चरण भी हो सकते हैं। 14वीं–15वीं शताब्दी के तालपाकम्, कीर्तन के प्रथम रचनाकार थे। अन्य रचियताओं में श्री त्यागराज, मुतुस्वामी दीक्षितार, श्यामाशास्त्री, पुरून्दरदास, स्वाति तिरूनाल आदि का नाम आता है।

3.6.3 कृति – दक्षिण भारतीय संगीत की रचना कृति, कीर्तन का विकसित रूप मानी जाती है। कलात्मक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी उत्पत्ति 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी गई है। कृति में मुख्यतः श्रृंगार, करूण व भक्ति रस की प्रधानता होती है। इसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता होती है। यह प्रचलित व अप्रचलित दोनों प्रकार के रागों में निबद्ध मिलती है तथा गाई जाती है। कृति में स्वर का प्रमुख स्थान है तथा साहित्य गौण रहता है। इसके तीनों अंगों–पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् का प्रयोग क्रम से किया जाता है।

3.6.4 वर्णम् – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति की रचनाओं में वर्णम् का प्रमुख स्थान है। कर्नाटक संगीत में राग स्वरूप निर्धारण में इसका ज्ञान आवश्यक है। कर्नाटक संगीत में गायक व वादक के लिए वर्णम् की शिक्षा अनिवार्य मानी गई है। राग स्वरूप के निर्धारण व स्पष्टीकरण हेतु हर राग को स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण में रचने के कारण इसको वर्णम् नाम दिया गया। सभागान और वादन में सर्वप्रथम वर्णम् ही गाया या बजाया जाता है। वर्णम् के दो भाग हैं – 1. पूर्वांग 2. उत्तरांग।

3.6.5 जावली – यह दक्षिण के जावल शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है श्रृंगारमय गीत। यह आधुनिक गीत का प्रकार है। जावल मुख्यतः श्रृंगार रस प्रधान होती है। इसका विषय मुख्यतः नायक व नायिका के प्रेम सम्बन्धों पर आधारित रहता है। इसका इतिहास 100–200 वर्ष पूर्व से मिलता है। यह उत्तर भारत की गायन शैली ठुमरी से मिलती जुंलती है। जावली में भी अन्य रचनाओं की भाँति पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् अंग होते हैं। यह मुख्यतः परज, खमाज, काफी, विहाग, झिंझोटी आदि रागों में

गाई जाती है तथा इसके साथ प्रायः आदि, रूपक, चापु आदि तालों का प्रयोग किया जाता है। इसके रचनाकरों में स्वाति तिरूनाल, पट्टणम् सुब्रह्मणयम, श्रीनिवास अय्यंगार आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

3.6.6 तिल्लाना – दक्षिण भारतीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियों में तिल्लाना का अपना अलग स्थान है। यह उत्तर भारतीय संगीत के तराना के समकक्ष है। भारतीय संगीत पद्धति के तराना नामक गीत का स्वरूप दक्षिणात्य संगीत का तिल्लाना है। इसका प्रयोग दक्षिण भारतीय संगीत में नृत्य के साथ भी किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से तोम, तनन, न, दे, धिन् जैसे निरर्थक अक्षर, सोलकट्टु अर्थात् पाटुक्षर(तरिकिट) और स्वर तथा चरणम् में पद रहता है।

3.6.7 रागमालिका – ऐसी रचना जिसमें भिन्न–भिन्न प्रकृति के रागों का मिश्रण हो उसे रागमालिका कहते हैं। यह एक लम्बी रचना है जिसे भिन्न–भिन्न रागों में अलग–अलग खण्ड़ों में गाया जाता है। इसमें एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि समान स्वरों के रागों को पास ना रखा जाए। रागमालिका में प्रयुक्त ताल शुरू से लेकर अन्त तक एक ही रहता है। इसके रचयिताओं को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह किन रागों का चुनाव करें व उनका क्रम क्या रखा जाए। इसके भी तीन अंग पल्लवी, अनुपल्लवी व चरणम् होते हैं।

3.7 दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के प्रमुख वाद्य – प्राचीनकाल में उत्तर व दक्षिण संगीत पद्धतियों में वाद्य समान ही थे किन्तु बाद में अलग वातावरण, विभिन्न गायन शैलियों व वाद्यों के विकास के साथ–साथ इनमें भी परिवर्तन होने लगे, इस कारण कुछ नए वाद्य भी अस्तित्व में आए। आज दोनों पद्धतियों में वाद्यों, उनकी बनावट व उनकी वादन शैलियों में काफी अन्तर आ गया है।

3.7.1 बेला वाद्य – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में बेला स्वतन्त्र व संगत वाद्य दोनों के रूप में प्रमुख स्थान रखता है। गायन में इसका विशेष प्रयोग आलाप करते समय व तान आदि क्रियाओं का अनुकरण करने में किया जाता है।

3.7.2 दक्षिणात्य वीणा – वीणा का भी दक्षिण भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग स्वतन्त्र वादन व संगत वाद्य दोनों रूप में किया जाता है। प्राचीन काल से ही वीणा का संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण भारतीय संगीत में अभी भी वीणा अत्यन्त लोकप्रिय व विकसित रूप में प्रचलित है। कर्नाटक पद्धति में इसके लोकप्रिय होने के कारण इसको समय के अनुसार लगातार विकसित किया जाता है।

3.7.3 नागस्वरम् या तूर्य – कर्नाटक संगीत के वाद्य में नागस्वरम या तूर्य का अपना स्थान है। देवालयों में, मांगलिक कार्यक्रमों में, उत्सव आदि अवसरों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह आच्चा लकड़ी का बना होता है जिसकी लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ होती है। इसमें सात स्वरों के रन्ध्र होते हैं जो चौथाई अंगुल व्यास के बनते हैं। मुख्य नागस्वरम् के अलावा एक अन्य नागस्वरम् का प्रयोग स्वर देने के लिए किया जाता है।

3.7.4 मृदंगम् – यह कर्नाटकी संगीत का प्रमुख ताल वाद्य है। मृदंगम् में पूड़ी का चमड़ा उत्तर भारतीय पखावज की अपेक्षा मोटा होता है। उत्तर भारत मृदंग की किनार का चमड़ा एक इंच व्यास का रखा जाता है, जबकि दक्षिण भारतीय मृदंगम् में किनारे का यह चमड़ा स्याही के स्थान को छोड़कर पूड़ी का समस्त स्थान घेरता है। इस तरह मृदंगम् में चाँट और स्याही के भाग दिखाई देते हैं जबकि पखावज में पूड़ी, चाँट, लव तथा स्याही इन तीनों भागों में दिखाई देती है।

3.8 दक्षिण भारतीय ताल पद्धति – कर्नाटक या दक्षिण ताल पद्धति में 35 तालों का प्रयोग किया जाता है। कर्नाटक ताल पद्धति में सात मुख्य ताल हैं। संगीत के कियात्मक पक्ष में तालों की अपर्याप्यता को देखते हुए इन तालों में व्यवहारित अंगों को दुगुना, चौगुना, पंचगुना, छःगुना और नौगुना करके इन सात तालों से ही पैंतीस तालों का निर्माण किया गया है। दक्षिण ताल पद्धति में अंग का बहुत महत्व है। अंग 6 प्रकार के होते हैं। तालों के स्वरूप को प्रकट करने व ताल लिखने या प्रदर्शित करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जो काम उत्तर भारतीय ताल पद्धति में विभागों का है वही दक्षिण में अंगों का है। निम्न तालिका से आप अंगों को समझ सकेंगेः–

क्रम	अंग नाम	मात्रा	चिन्ह
1	अणुद्रुत	1	ु
2	द्रुत	2	0
3	लघु	4	।
4	गुरू	8	ऽ या 8
5	प्लुत	12	3 या 8
6	काकपद	16	+

3.9 दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की समानताएं :–

1. दोनों पद्धतियों में एक सप्तक के अन्तर्गत 22 श्रुतियां और 12 शुद्व और विकृत स्वर होते हैं। स्वर स्थानों में भी लगभग समानता है।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में मेलराग वर्गीकरण प्रचलित है तथा उत्तर भारत में थाट–राग वर्गीकरण। मेल व थाट दोनों शब्दों का मतलब एक ही है। दोनों पद्धतियों में थाट/मेल को जनक तथा राग को जन्य माना गया है। थाट राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 भातखंडे जी को तथा मेल राग वर्गीकरण का श्रेय पं0 व्यंकटमुखी को जाता है।
3. दोनों पद्धतियों की कुछ तालें भी समान हैं। जैसे उत्तर भारत की चारताल व एकताल, दक्षिण की चतस्त्र जाति की अठ ताल के समकक्ष है।
4. दोनों पद्धतियों में विभाग की प्रथम मात्रा पर ताली देने का प्रावधान है।
5. दोनों पद्धतियों में कुछ राग भी समान हैं। जैसे हंसध्वनि, चारूकेशी, नारायणी, आभोगी, किरवाणी, कलावती आदि। खमाज व विहाग दक्षिण में उत्तर भारत के समान ही गाए जाते हैं। हिंडौल राग उत्तर के मालकौंस के समकक्ष है।
6. दोनों पद्धतियों की कुछ गायन शैलियों में भी समानता पाई जाती है। जैसे तराना–तिल्लाना, ठुमरी–जावलि, ख्याल–वर्णम् आदि।

3.10 दक्षिण भारतीय व उत्तर भारतीय संगीत पद्धतियों की असमानताएं :–

1. दक्षिण में स्वर के कम्पन पर तथा उत्तर में स्वर की स्थिरता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. दक्षिण में एक ही स्वर को दो नामों से भी जाना जाता है, जैसे चतुःश्रुति ऋषभ, साधारण गांधार, चतुःश्रुति धैवत और कौशिक निषाद को क्रमशः शुद्ध गान्धार, षट्श्रुति ऋषभ, शुद्ध निषाद और षट्श्रुति धैवत जैसे अन्य नामों से भी जाना जाता है। उत्तर में स्वरों के दो नाम नहीं होते।

3. दक्षिण में बन्दिशों में परिवर्तन नहीं किया जाता है। बंदिश की मौलिकता पर विशेष बल दिया जाता है। उत्तर में रचनाओं में इतना बंधन नहीं है। गायक रचना में परिवर्तन कर सकता है।
4. उत्तर में बड़े ख्याल व छोटे ख्याल में रचना(साहित्य) एक से दो पंक्तियों का होता है तथा गायक उसी पर अधिक समय तक राग–विस्तार करता रहता है। दक्षिण की कृतियों में पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरणम् होते हैं तथा इनमें उत्तर की अपेक्षा साहित्य अधिक रहता है।
5. एक मतानुसर कर्नाटक संगीत में विलम्बित लय नहीं होती। रचनाएं प्रायः मध्य व द्रुत लय में होती हैं।
6. उत्तर में 10 थाट माने गए हैं तथा दक्षिण में 72 मेल माने गए हैं।

3.11 अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. श्रुति की परिभाषा देते हुए संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. स्वर एवं श्रुति में क्या अन्तर है? संक्षेप में बताइए।
3. भरत कृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध स्वरों को बताइए।
4. प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. वैदिक काल में तीन स्वरों का प्रचलन था।
2. कवि लोचन ने राग तरंगिनी में 20 स्वरों का वर्णन किया है।
3. आधुनिक ग्रन्थकार अपने शुद्ध स्वरों को बिलावल थाट समान मानते हैं।
4. पाणिनी के समय तक सात स्वरों का प्रचार नहीं हुआ था।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. प्राचीन समय में सा स्वर की उत्पत्ति _____पक्षी से मानी गई है।
2. पं. शारंगदेव ने बारहवीं श्रुति पर _____स्वर स्थापित किया है।
3. ऋषभ एवं धैवत स्वरों की श्रुति संख्या _____है।
4. भरत ने सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर–गान्धार एवं _____विकृत स्वर माने हैं।
5. दक्षिण का ..... थाट भारतीय संगीत के तोड़ी थाट के समकक्ष माना जाता है।

3.12 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के श्रुति एवं स्वर के बारे में जान चुके होंगे। प्राचीन काल से स्वरों का अस्तित्व सामने आता है। स्वरों का सम्बन्ध अनेक पशु–पक्षियों एवं देवी–देवताओं से भी जोड़ा गया है। सभी ने श्रुतियों की संख्या 22 मानी है परन्तु उनमें स्वरों की स्थापना में भिन्नता है। विकृत स्वरों की संख्या में भी विद्वानों के मत समान नहीं हैं। प्राचीन विद्वानों ने सप्तक के बराबर 22 भाग कर 22 श्रुतियों में विभाजन करके स्वरों की स्थापना की है परन्तु मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों को समान न मानते हुए वीणा के तार पर विभिन्न लम्बाईयों में स्वरों की स्थापना की है। प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी अंतिम श्रुति में स्थान दिया है परन्तु आधुनिक ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वरों को अपनी पहली श्रुति पर स्थापित किया है। विभिन्न कालों के ग्रन्थकारों के माध्यम से स्वर एवं श्रुति के सम्बन्ध में उस काल की स्थिति एवं संगीत में प्रयुक्त स्वरों का विषद ज्ञान

प्राप्त हो जाता है। आप श्रुति एवं स्वर से संबंधित विभिन्न पहलुओं से परिचित हो चुके होंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट, रचनाओं, वाद्यों एवं ताल पद्धति से भी परिचित हो चुके होंगे।

शब्दावली

1. द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।
2. प्रबन्ध – प्राचीनकाल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक आदि आते थे। प्रबन्ध की चार धातुएँ उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग हैं।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. मयूर
2. अन्तर गान्धार
3. तीन
4. काकली निषाद
5. शुभपंतुवराली

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर,(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. राजन, डा0 रेणु,(2010), भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध आयाम, अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. सर्राफ, डॉ0 रमा,(2004), *भारतीय संगीत सरिता,* कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण,(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, बसन्त,(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गोबर्धन, शान्ति,(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पाठक, पं0 जगदीश नारायण,(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1- दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर, थाट एवं रचनाओं के विषय में बताइए।

इकाई 4 –स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 गायन एवं तंत्रकारी शैली
4.4 वादन में आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला
4.5 मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई संगीत में स्नातक (BAMI(N)-302) पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में जातिगायन, राग गायन एवं राग के लक्षणों के बारे में जान चुके हैं। आप सारणा चतुष्टयी को भी विस्तार से समझ चुके हैं। आप पाठ्यक्रम के रागों से भी भलीं–भांति परिचित हो चुके हैं।

इस इकाई में गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के विषय में बताया गया है। इस इकाई में वादन में बजने वाले आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला को समझाया गया है। इसमें मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन भी प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के बारे में जान सकेंगे। आप वादन में बजने वाले आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला, झाला आदि को भी जान सकेंगे। आप मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों को भी समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के बारे में जान सकेंगे।
2. आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला, झाला आदि को जान सकेंगे।
3. मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों को समझ सकेंगे।

4.3 गायन एवं तंत्रकारी शैली

विद्यार्थियों के संज्ञान के लिए यह बात जानना अति आवश्यक है कि प्राचीन काल में वादन का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था और वादन हमेशा गायन का अनुकरण ही करता था, अर्थात गायन की संगति के लिए ही वादन का प्रयोग होता था। वादक गायक का अनुसरण करते हुए वाद्य पर भी वही धुन बजाते थे। धीरे–धीरे वाद्यों का स्वतन्त्र वादन प्रारम्भ हुआ परन्तु वादक अभी भी गायन का अुनसरण करते हुए बंदिश गीत आदि का ही वादन किया करते थे। यही पद्धति आगे चलकर गायकी अंग का वादन कहलायी। तत्पश्चात वाद्यों पर बजाने के लिए गतकारों या तंत्रकारी पद्धति का विकास हुआ। वैदिक काल में गायन के साथ वीणा वादन होता था। प्राचीन काल में सभी प्रकार के तत् वाद्यों के लिए वीणा संज्ञा प्रचलित थी और वीणा वादन हमेशा गायन के अनुकरण में ही होता था। आज वादन की दो पद्धतियाँ प्रचार में है जो निम्नलिखित है :–

1. गायकी अंग – प्रचलित तत् वद्यों में सितार त्रितंत्री वीणा का ही विकसित रुप है। अपने विकास के प्रारम्भिक दिनों में सितार का प्रयोग गान के लिए ही होता था। 18वीं शाताब्दी में सेनिया घराने के कुछ उस्तादों ने अपने खानदान के बाहर के लोगों को शिक्षा देने के लिए अन्य वाद्यों को भी अपनाया। इससे सितार और सुरबहार को बढ़ावा मिला। वीणा का आलाप अंग सुरबहार और गीत अंग सितार पर बजने लगा। सिखाने वाले उस्ताद, गायक होने को कारण गायकी को ही प्रमुख स्थान देते थे तथा उन्होंने वादन में भी इसी अंग को स्थान दिया। **हमारे** संगीत की प्राचीन शैली ध्रुवपद में गायन के अभ्यासपूर्ण प्रत्येक स्वर की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। स्वर को यथोचित स्थान पर लगाना ही परमावश्यक होता है। वादन में भी उसी तरह स्वर का महत्व है। चूंकि हमारे कण्ठ स्थिति स्वर–यंत्र प्रकृति प्रदत्त होता है, उसका प्रयोग भी आघात जनित है। अर्थात् कण्ठ से जो स्वर उत्पन्न होता है वह हमारे शारीरिक प्रयास से ही होता है। वादन में हम उसे अघात, मिजराब या अन्य प्रकार की व्यवस्था, से उत्पन्न करते हैं इसलिये यदि कहा जाय कि कण्ठ स्वर या गायन का ही अनुसरण हम वादन में करते हैं तो यह असत्य न होगा। ध्रुपद में वीणा व अन्य वाद्यों की संगति में यही किया जाता रहा है। गायन की विशेषता को ही वादन में अवतरित करना ही गायकी है। किसी भी वाद्य में वादन के समय वादक गायन की महत्त्वपूर्ण स्वर–संगतियों का ही अनुसरण करता है जो उसकी सूझ–बूझ व अभ्यास तथा चिंतन पर आधारित होता है। मिज़राब के आघात पर ही व मधुरता व आदत्त, जिगर, हिसाब की पूर्णता को प्रस्तुत करता है। एकल सितार वादन या अन्य वाद्य के वादन में उक्त तथ्यों का होना आवश्यक है।

कंठ संगीत को सर्वोपरि स्थान देते हुए वादकों ने भी गायन की परम्परा का निर्वहन किया। या यूँ कहियें कि जितने भी प्रसिद्ध वादक हुए वे सभी गायन में भी पूर्ण पारंगत होने के कारण गायन का अनुसरण ही वाद्य पर करते थे। इसी के चलते गायकी अंग से वादन का विकास हुआ।

उ0 विलायत खाँ व उनके शिष्य परम्परा में गायकी अंग का सितार ही बजाया जाता है।

2. गतकारी या तंत्रकारी अंग – गायकी अंग को पूर्ण रुप से सितार व अन्य वाद्यों पर बजाना संतोषप्रद सिद्ध न हो सका और सेनिया घराने ने वादन की नई शैली 'गत' का आविष्कार किया। गत की बंदिश मूलतः गान की शैलियों से प्रभावित थी, किन्तु मिज़राब के विशेष प्रयोगों के कारण

गत की रचना गान से भिन्नतः प्रयोग होने लगी। तंत्र के लिए उपयुक्त गत शैली का निर्माण सेनी घराने के उस्तादों को देते हैं। गतों के निर्माणकर्त्ताओं में निहाल पुत्र अमीर खां एवं मसीत खां के नाम से क्रमशः मसीतखानी एवं अमीरखानी का प्रचलन हुआ। इनके शिष्य बरकत उल्ला खां, बहादुर खां एवं गुलाम रजा खां सेनी घराने के थे, जिन के नाम पर रजाखानी गत का प्रचार हुआ। सितार व अन्य तत् वाद्यो में दो प्रकार की गतों का प्रचलन शुरू हुआ, जिन्हें हम वादन शैली या बाज़ भी कह सकते हैं। इस प्रकार दो प्रकार की गतों का विकास हुआ–मसीतखानी और रज़ाखानी गत।

हर वाद्य का अपना एक चरित्र होता है। चरित्र से तात्पर्य है उस वाद्य की बनावट, गूँज (आस), आघात की मात्रा तथा टोनल क्वालिटी (स्वर की यथोचित मधुर ध्वनि) का अध्ययन कर तंत्र में प्रयोग करने की दृष्टि से 'गतकारी' शब्द का प्रचलन हुआ। इस शैली में उन सभी बातों का ध्यान रखा जाता है जो हमारी ध्रुवपद शैली में निहित है। आज भी वादन में विस्तृत आलाप, लयबद्ध आलाप, द्रुत लय में आलाप प्रस्तुत किया जाता है, तत्पश्चात् गतें बजाई जाती है। गायन की शब्द रचना (बन्दिशों) को हू–ब–हूँ अर्थात् पूर्णतः वादन में प्रस्तुत करता है। संतोषजनक न होने पर विद्वानों ने राग व ताल में बंधी हुई मिज़राब के आघातों को पूरी तरह ध्यान देते हुए 'गतों' का प्रचार किया और जो कलान्तर में लोकप्रिय हुई। आज वादक इन्हीं गतों के आधार पर अपने वादन कला का प्रदर्शन करते हैं। गतों में विलम्बित गत के दौरान चैनदारी, लयकारी, विभिन्न कर्णप्रिय छन्दों युक्त स्वर–संगतियों का प्रयोग यथा स्थान किया जाता है। केवल स्वरों द्वारा भावाभिव्यक्ति का प्रयास किया जाता है जो वास्तव में कठिन साधना व चिंतन द्वारा ही सम्भव होता है।

गत की परिभाषा – किसी भी वाद्य यन्त्र पर बजाई जाने वाली राग–ताल बद्ध सुमधुर रचनायें गत कहलाती है। तत् वाद्यों पर बजाई जाने वाली गतों के मुख्य दो प्रकार होते है :–

1. **मसीतखानी गत**
2. **रज़ाखानी गत**

प्रत्येक गत के दो चरण होते हैं। पहले चरण को स्थाई और दूसरे को अंतरा कहते हैं।

1. मसीतखानी गत – तंत्रकारों ने ख्याल शैली के विलम्बित ख्याल के समान ही मसीतखानी गत को विलम्बित के रुप में और रजाखानी गत को ख्याल शैली के द्रुत ख्याल समान द्रुत के रुप में प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया। आज के विद्यार्थी के लिए मसीतखानी का अर्थ विलम्बित गत ही है। यह तीनताल में ही बजायी जाती है। कुछ श्रेष्ठ कलाकारों ने तीनताल के स्थान पर इसे रुपक, झपताल आदि में भी बजाना शुरु किया है। इन तालों में गतें बजाने के लिए ताल के अनुसार मिज़राब के सीधे बोल प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरणस्वरुप रुपक के लिए ''दारा दारा दा दारा', झपताल के लिए ''दारा दा दारा दारा दा दारा'' आदि। मसीतखानी गत की विशेषता उसकी विलम्बित लय है, जिस पर बीन का स्पष्ट प्रभाव है। जयपुर के मसीत खाँ इसके आविष्कर्ता माने जाते हैं। इस गत की रचना में दिर, दा, दिर दारा दा, दारा, इस क्रम में बोलों की रचना होनी चाहिए।

मसीतखांनी गत में जोड़, आलाप, मीड़, गमक आदि विभिन्न प्रकार की आलंकारिक तानों का विशेषतः प्रदर्शन किया जाता है। मसीत खाँ साहब ने तीनताल में 12 वीं मात्रा से गत का प्रारंभ कर बोलों का इस प्रकार प्रयोग किया – **दिर। दा दिर दा रा। दा दा रा**, पुनः इन्ही बोलों को दुबारा बजाया जाता है। इस तरह 8 मात्राओं के बोलों को दोबारा बजाने से उस्ताद मसीतखाँ ने इस लोकप्रिय 'गत' को प्रचलित किया। इस गत का प्रयोग प्रायः तत वाद्यो यथा सितार, सरोद आदि में आज भी सुन्दर ढंग से किया जा रहा है। विलम्बित गत का पर्याय मसीतखानी गत से है।

2. रजाखानी गत – रजाखानी गत का अभिप्राय आज द्रुत गत से ही लिया जाता है। इसमें भी तीनताल का ही प्रयोग होता रहा है। मसीतखानी के समान इसमें भी नई तालों का प्रवेश हुआ है। जौनपुर के रजा खाँ मसीत खाँ के शागिर्द थे, जिन्होंने रज़ाखनी गत का आविष्कार किया। इसमें द्रुतलय में गत तथा तोड़े बजाये जाते हैं। रज़ाखानी में गतकारी, चिकारी तथा विभिन्न प्रकार के ''झाला'' का प्रदर्शन किया जाता है। आज सभी कलाकार मसीतखानी और रज़ाखानी गत एक साथ बजाते हैं।

बाज़ – विभिन्न प्रकार से मिज़राब के बोलो को सितार पर कालात्मक ढंग से बजाने को बाज़ कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ ''सितार बजाने की विशिष्ट शैली'' से होता है। बाज प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैं :–

1. दिल्ली बाज़ – इसे पश्चिमी बाज भी कहते हैं। इसमे मसीतखानी गतें बजाई जाती हैं। लय इसमें विलम्बित रखी जाती है, तथा गायकी ढंग से आलाप, मींड, जमजमा, मुर्की आदि गमकों का खूब प्रयोग होता है तथा इसमें विभिन्न लयों की तालों का प्रयोग किया जाता है।

2. गुलाम रज़ा बाज़ अथवा पूर्वी बाज – इसमें द्रुत लय की प्रधानता होती है, जिसें रज़ाखानी कहते हैं। इसमें तैयारी के साथ कलात्मक ढ़ंग से तोड़े व झाले बजाये जाते है और अन्त में लय बहुत तेज कर देते हैं। साधारणतया इसे लखनऊ बाज़ भी कहते हैं, क्योंकि गुलाम रज़ा खॉ, जिन्होनें इस प्रकार की शैली का शुभारम्भ किया था, वे लखनऊ के निवासी थे।

जब बाज़ को व्यापक अर्थ में लेते हैं तो इसके अन्तर्गत सितार बजाने की विविध शैलियां और उनके विस्तार आ जाते है। इस प्रकार विविध वादकों की शैली की विविधता से विविध बाज भी बन जाते हैं। केवल लय व बोलों के अन्तर से ही बाज़ का भेद मानना पर्याप्त नहीं है। मसीतखानी व रज़ाखानी गतों को ही अलग–अलग वादक अपने विशिष्ट ढंग से बजा सकते हैं। लेकिन इस प्रकार की विभिन्न शैलियों को घराने के नाम से जाना जाता है।

4.4 वादन में आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला

आधुनिक काल में प्रचलित आलाप के विषय में जानने से पूर्व विद्यार्थियों के संज्ञानार्थ प्राचीन आलाप गायन का संक्षिप्त परिचय जानना आवश्यक है। जैसा कि आप जानते हैं कि शास्त्रीय संगीत नियमों की परिधि में बांधा है। प्राचीन काल में यह नियम अधिक कठिन थे जिसमें आलाप एक निश्चित स्वर से प्रारम्भ होगा और निश्चित स्वर पर ही समाप्त होगा। प्राचीन समय में आलाप करने के एक विशेष नियम को स्वरस्थान कहते थे। अंश स्वर पर ही समस्त राग निर्भर रहता है, उसे ही स्थायी स्वर कहते हैं। स्थायी से चौथा स्वर द्वयर्ध, आठवाँ द्विगुण कहा जाता है और द्विगुण व द्वयर्थ स्वर के बीच के स्वर अर्धस्थित स्वर माने जाते हैं। प्रथम स्वर स्थान में गायक को अपना आलाप द्वयर्ध स्वर के नीचे रखना आवश्यक होता था। न्यास स्थायी स्वर पर किया जाता था। दूसरे स्वर स्थान में द्वयर्ध स्वर भी सम्मिलित कर लिया जाता था और अंत में पुनः स्थायी पर किया जाता था। तीसरे स्थान में आलाप का क्रम अर्धस्थित स्वरों में होता था। परन्तु आलाप की समाप्ति सदैव स्थायी स्वर पर ही की जाती थी। चौथे स्वर स्थान नियम में द्विगुण स्वर तथा उससे ऊपर के स्वर भी सम्मिलित कर लिये जाते थे। परन्तु न्यास पुनः स्थायी स्वर पर ही होता था। इस प्रकार आलाप के चार स्वर स्थान नियम माने जाते थे। तत्पश्चात् रूपकालाप का प्रयोग होने लगा। रूपकालाप में प्रबंध के धातु के समान, आलाप के भिन्न–भिन्न भाग करके गायक को दिखाने पड़ते थे। इन भागों में जो अंतिम स्वर आते थे उन्हें अपन्यास कहा जाता था। रागालाप का उद्देश्य श्रोताओं के सम्मुख राग की व्याख्या करना है कि वह अमुक राग गा रहे हैं। परन्तु रूपकालाप स्वतः ही प्रत्यक्ष प्रबन्ध के समान दिखाई पड़ता था। रूपकालाप के बाद आलप्ति गान की बारी आती है। आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही आलप्ति गान कहलाता है।

आलाप के अन्तर्गत प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द :–

1. **आविर्भाव–तिरोभाव** – किसी राग का विस्तार करते समय उसके बीच में अन्य समप्रकृति रागों के छोटे–छोटे टुकड़े दिखाकर, थोड़ी देर के लिए मुख्य राग को छिपाने का उपक्रम जब किया जाता है, तो उसे तिरोभाव कहते हैं और फिर मुख्य राग स्वरों को कुशलतापूर्वक दिखाकर राग रूप स्पष्ट करने को आविर्भाव कहते हैं।

2. **स्थाय** – छोटे–छोटे स्वर समुदायों को स्थाय कहते हैं, जैसे सा नि ध़ नि सा, म, ग रे सा स्वर समुदाय को आप बागेश्री की पकड़ कह सकते हैं। परन्तु कुछ टुकड़े जैसे – *ग म ध* या *म ध नि ध म* अथवा *सां नि ध नि ध* को पकड़ नहीं वरन् स्थाय कहा जायेगा।

3. **मुखचालन** – रागोचित विविध गमक अलंकारों का प्रयोग करते हुए गायन–वादन करने को मुखचालन कहते हैं।

4. **आक्षिप्तिका** – स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है उसे प्राचीन पंडित आक्षिप्तिका कहते थे।

5. **विदारी** – गीत तथा आलापों में विभिक्त छोटे–छोटे भागों को विदारी कहते हैं।

वादन में आलाप :–

आलाप की परिभाषा – गायक जब अपना गाना प्रारम्भ करता है तो राग के अनुसार उसके स्वरों को विलम्बित लय में फैलाकर यह दिखाता है कि कौन सा राग गा रहा है। आलाप को स्वर विस्तार भी कहते हैं, जैसे बिलावल का स्वर विस्तार इस प्रकार शुरू करेंगे :–

ग ऽ रे ऽ सा ऽ सा, रे सा ऽ ग ऽ म ग प ऽ म ग, म रे सा ऽ ऽ ऽ इत्यादि।

आधुनिक संगीत में प्राचीन निबद्ध व अनिबद्ध गान के अन्तर्गत अनिबद्ध गान का केवल एक प्रकार प्रचार में है और वह है आलाप। वादन में आलाप गायन की ही भांति स्वर विस्तार हैं जिसमें राग स्वरूप के अनुसार मींड़, गमक, कृन्तन, आंदोलन, घसीट आदि वाद्य की तकनीक द्वारा गायन के समान ही आलाप प्रस्तुत किया जाता है। वादन में आलाप का विस्तार सर्वप्रथम मंद्र सप्तक में तत्पश्चात मंद्र और मध्य में स्थाई की भांति किया जाता है। उसके बाद आलाप का अन्तरा जिसमें मध्य से तार सप्तक में विस्तार किया जाता है। तार सप्तक में राग के स्वरूप के विस्तार के बाद वापस मध्य सप्तक में षड़ज पर आकार आलाप का समापन करते हैं।

आलाप में लय की दृष्टि से आलाप के स्थाई भाग में विलम्बित लय के साथ आलाप चलता है। अंतरे में आलाप में लय बढ़ा दी जाती है और फिर मध्य सप्तक के षड़ज पर समाप्त करते हैं। विलम्बित लय में आलाप के पश्चात् जोड़ आलाप और जोड़ झाला क्रमशः बजाया जाता है।

वादन में जोड़ आलाप – आलाप के बाद और विलम्बित गत से पहले बजाया जाने वाला वह भाग जो लय बद्ध तो होता है किन्तु ताल बद्ध नहीं, जोड़ आलाप कहलाता है। जोड़ का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना, अतः वह आलाप में जोड़ा जाने वाला भाग है। इसका प्रारम्भ मंद्र सप्तक में धीमी लय में करते हैं, जिसमें धीरे–धीरे लय बढ़ाते जाते हैं और जोड़ ताने या जोड़ झाला बजाकर इसको समाप्त करते हैं। यह कण, खटका, मींड़ व गमक युक्त होता है। इसके बीच–बीच में सम भी दिखाया जाता है जिसे मुखड़ा कहते हैं।

जोड़ आलाप, गायन के नोम् तोम् के आलाप का ही प्रतिरूप है। राग का सम्पूर्ण चित्रण करके उसमें प्रयुक्त होने वाले विशेष स्वर समूह, विशेष मींड़, विशिष्ट मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी स्वर ध्वनियों आदि का एक अति कौशल पूर्ण तथा मनोरंजक प्रयोग प्रदर्शित करते हैं। जोड़ आलाप में प्रयुक्त विभिन्न छन्द इस प्रकार हैं–

1. दा रा दा रा
2. दा दा रा रा

3. रा दा दा दा

4. दा दा रा, दा दा रा, दा दा रा, दा दा रा, दा रा दा रा

जोड़ आलाप लय बद्ध आलाप हैं जिसमें आठ मात्रा, सोलह मात्रा या अधिक मात्राओं के टुकड़े होते हैं। अर्थात् जोड़ आलाप ताल बद्ध न होते हुए भी ताल में बंधा है। जोड़ आलाप के बाद जोड़ तानें या जोड़ झाला बजाया जाता है।

वादन में जोड़ झाला – जोड़ झाला तत् वाद्यों में प्रयुक्त झाले की भांति ही होता है। इसमें कोई अंतर नहीं होता है। सितार में चिकारी के तारों पर मिज़राब के अपकर्ष प्रहार में जिस 'र' स्वर को विविध प्रकार से निकाल कर बजाते हैं, उसे झाला कहते हैं। झाला बजाते समय बाज के तार पर भी मिजराब का प्रहार होता है, इसी बीच चिकारी भी बजाई जाती है। झाले की सहायता से एक स्वर को लम्बा करना संभव होता है। चिकारी के बोल को रा कहते हैं, जिसका चिन्ह अए झ या ढ है। जोड़ झाले में सामान्य झाले की अपेक्षा छन्दों का प्रयोग अधिक किया जाता है। झाले में लय द्रुत होती है और झाले की समाप्ति मध्य षड़ज पर आलाप के मुखड़े को तीन बार बजा कर करते हैं। संपूर्ण वादन की प्रस्तुति में राग, ताल और गत के अन्तर्गत विभिन्न लयकारियाँ तैयारी के साथ बजाई जाती हैं। सुन्दर कर्णप्रिय तिहाइयां, गत परन आदि का समावेश वादन में होता है।

वादन में झाला – स्वर वाद्यों में वादन का समापन झाला द्वारा किया जाता है। झाला के लिए बाज व चिकारी के तार का प्रयोग किया जाता है। बाज के तार पर दा तथा चिकारी के तार पर रा बोल को क्रमशः दा रा रा रा के क्रम में बजाया जाता है। इसे झाला कहा जाता है। झाले में स्वरों की अपेक्षा लय की प्रमुखता रहती है। यह द्रुत लय से शुरू होकर अतिद्रुत लय तक जाता है। झाले में ठोंक, लड़लपेट, मींड़, गमक आदि का प्रयोग भी किया जाता है। झाले के अन्तर्गत दा रा रा रा बोल समूह के अनेक प्रकारों का भी प्रयोग किया जाता है। झाले का समापन एक तिहाई से किया जाता है जो किसी भी मात्रा से शुरू की जा सकती है किन्तु समाप्त सम पर ही होती है।

4.5 मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन

सितार के विभिन्न बोल और उन्हें निकालने की विधि – सितार के तारों पर मिज़राब का प्रहार करने से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते है। मूल रुप से सितार के केवल दो ही बोल होते है, **'दा'** और **'रा'**। इन्ही दो बोलों को तरह–तरह से बजाने और एक दूसरे से मिलाकर निकालने पर अन्य विविध बोल बनते हैं।

दा – जब बाज के तार पर बाहर की ओर से मिज़राब से प्रहार करते हुए अंदर की तरफ लाते हैं, तो 'दा' बोल निकलता है। इस प्रकार प्रहार करने को 'आकर्ष' प्रहार कहते हैं।

रा – जब अंदर से तार पर आघात करते हुए बाहर की ओर मिज़राब वाली उंगली जाती है, तब 'रा' बोल निकलता है। इस प्रकार का प्रहार 'अपकर्ष' प्रहार कहलता है। यह 'आकर्ष' प्रहार की ठीक उल्टी दिशा में किया जाता है।

दिर – इन दोनों बोलों –'दा' और 'रा' को शीघ्रता–पूर्वक एक ही मात्रा में बजाया जाता है, तब 'दिर' बोल बन जाता है।

दार – 'दा' बजाने के बाद 'रा' बजाने का आधा समय यूं ही छोड़ देने पर शेष आधे समय में 'र' बजाने पर 'दार' का बोल निकलता है। इसे इस प्रकार लिखते है– दा, ऽर।

द्रा – दा व रा को मिलाकर अति शीघ्रता से बजाने पर द्रा का बोल निकलता है।

इन्ही बोलों को हेर–फेर कर बजाने से 'दाड़' 'द्रार्दा' आदि बोल निकलते है।

सितार–शास्त्र से सम्बन्धित कुछ अन्य जानकारियां :–

ठाठ–सितार की डांड पर विभिन्न स्थानों पर सरगम के विभिन्न स्वर–स्थान पूर्व–निर्धारित है। इन नियत स्थानों पर परदे बांध दिए गए हैं। सितार में बंधे हुए इन्हीं परदों के समुदाय को ठाठ कहते हैं। ठाठ मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – **(1) अचल ठाठ (2) चल ठाठ।**

(1) अचल ठाठ – अचल शब्द का अर्थ होता है, अपरिवर्तनशील। इसीलिए अचल ठाठ वाला सितार वह होता है, जिसके परदों को खिसकाने की आवश्यकता नहीं होती। उसी रुप में प्रत्येक थाट के राग बजाए जा सकते हैं। इस ठाठ में चौबीस परदे होते हैं, जिनका क्रम इस प्रकार होता है– म़, र्म़, प़, घ़ नि़ नि़ सा रे़ रे ग म म ध ध नि नि सां रें रें गं गं मं। कभी–कभी तार सप्तक का मं स्वर हटा देते है, और सितार में 23 ही परदे बंधे रहते हैं।

(2) चल ठाठ– चल ठाठ के सितार में 16 से 19 परदे होते हैं। इसीलिए आवश्यकतानुसार इसमें परदे खिसकानें की आवश्यकता पड़ती है। सितार पर बाजए जाने वाले रागों के अनुसार परदे खिसकाए जाते हैं। सोलह परदे इस क्रम सें बँधें होते हैं – म़ प़ ध़ नि़ नि़ सा रे ग म म प ध नी सां रें और गं।

17 परदों के ठाठ में तार मं का परदा सम्मिलित किया जाता है। इस भांति विभिन्न संगीतज्ञ और विद्वान अपनी–अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार परदों की संख्या निश्चित करते हैं तथा उनमें परिवर्तन भी करते हैं।

बोल – सितार के तार पर मिज़राब द्वारा भांति–भांति से जो प्रहार किए जाते हैं, उनसे ही उत्पन्न ध्वनि को सितार–शास्त्र में 'बोल' कहते हैं। बोल निकालने के लिए मुख्य रुप से दो प्रकार से प्रहार किया जाता है :–

(1) आकर्ष प्रहार – दाँहिने हाथ की तर्जनी पर मिज़राब को पहन कर बाज़ के तार पर बाहर से आघात करते हुए जब अन्दर की ओर ले जाते हैं, तब इस क्रिया को आकर्ष प्रहार अथवा सुलट प्रहार कहते हैं। इस प्रक्रिया से निकला बोल 'दा' का होता है।

(2) अपकर्ष प्रहार – जब तर्जनी पर पहने मिज़राब की मदद से बाज के तार पर अन्दर से आघात करते हुए बाहर की ओर जाते हैं, तब 'रा' का बोल निकलता है। अपकर्ष प्रहार की प्रक्रिया आकर्ष प्रहार की प्रक्रिया के ठीक विपरीत होती है।

सितार वादन में अभ्यासोपरान्त ही मींड का प्रयोग जो कि एक ही पर्दे (सुन्दरियां) पर, आरोही क्रम व अवरोही क्रम में निकालना, अभ्यास से माधुर्य व रागोचित स्वर–व्यवस्था को प्रदर्शित करता है। मिज़राब के आघात का महत्त्व अर्थात कितने हल्के से व दबाव बनाते हुए स्वरोत्पत्ति करना, सितार वादन की कला को आत्मसात् करने के उपरान्त ही समझा जा सकता है। उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खाँ साहब ने इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर 'जाफर खानी' गतों का प्रचार किया है। मैहर घराने के संस्थापक बाबा अल्लाउद्धीन खाँ साहब ने तीनताल के अतिरिक्त अन्य प्रचलित तालों में भी गतों का निर्माण किया। दा रा तथा अन्य संयुक्त बोलों को विभिन्न छन्दों में पिरोकर सुन्दर गतें प्रचलित की। मसीतखानी गतों को केवल निश्चित बोलों के अतिरिक्त मीड, घसीट, कृन्तन, गिटकरी व ठोक आदि का प्रयोग आवश्यकतानुसार, कर्णप्रिय बनाने के लिए कलाकार वादन प्रस्तुत करते हैं। उनका उद्धेश्य केवल रागोचित नियमों को ध्यान में रखकर केवल कर्णप्रिय प्रस्तुति का होता है। अतः तंत्रकारी, गायकी का ही परिष्कृत रूप है जो किसी वाद्य में मिज़राब या अन्य आघातक के प्रयोग से प्रस्तुत किया जाता है।

अतः गायकी व तंत्रकारी कोई अलग–अलग शैली नहीं मानी जा सकती। दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं। कोई भी वादक केवल गायकी नहीं बजा सकता। प्रकृति प्रदत्त कण्ठ स्थित स्वर–यंत्र की नकल करना वादन में असंभव लगता है।

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. सितार को ..... वीणा का विकसित रुप मानते हैं
2. ..... घराने के द्वारा वादन की नई शैली 'गत' का आविष्कार किया गया।
3. गतों के ..... प्रकार माने जाते हैं।
4. मसीतखानी गत में बोलों का क्रम ..... प्रकार रहता है।
5. ..... रज़ाखनी गत के आविष्कारक माने जाते हैं।
6. बाज प्रमुखतः ..... प्रकार के माने गये हैं।
7. आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही ..... गान कहलाता है।
8. स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है उसे प्राचीन समय में ..... कहते थे।
9. गीत तथा आलापों में विभिन्न छोटे–छोटे भागों को ..... कहते हैं।
10. अचल ठाठ में ..... परदे होते हैं।
11. चल ठाठ के सितार में ..... परदें होते हैं।
12. मिज़राब से बाज़ के तार पर बाहर से अन्दर की ओर प्रहार करने पर ..... बोल निकलता है तथा इस किया को ..... कहते हैं।

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1.गायन व तंत्रकारी पद्धति से आप क्या समझते है। वादन में इसका क्या महत्व है।

2.गत से क्या अभिप्राय है? गत कितने प्रकार की होती है?

3. वादन में प्रयुक्त विभिन्न बोलों के निकास विधि को समझाइये।

4.आलाप से आप क्या समझते हैं। प्राचीन काल में आलाप का क्या विधान था वर्णन कीजिए।

5.वादन में आलाप का वर्णन कीजिए।

6.जोड़ आलाप एवं जोड़ झाले का वर्णन कीजिए।

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के विषय में जान चुके होंगे। गायन व तंत्रकारी पद्धति अलग–अलग शैली नहीं मानी जा सकती। दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं। प्राचीन काल में वादन का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था और वादन हमेशा गायन का अनुकरण ही करता था, अर्थात गायन की संगति के लिए ही वादन का प्रयोग होता था। धीरे–धीरे वाद्यों का स्वतन्त्र वादन प्रारम्भ हुआ परन्तु वादक अभी भी गायन का अुनसरण करते हुए बंदिश गीत आदि का ही वादन किया करते थे। यही पद्धति आगे चलकर गायकी अंग का वादन कहलायी। तत्पश्चात वाद्यों पर बजाने के लिए गतकारों या तंत्रकारी पद्धति का विकास हुआ। आप वादन में बजाए जाने वाले आलाप, जोड आलाप, जोड झाला, झाला आदि के बारे में भी समझ चुके होंगे। आप मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों के विषय में भी जान चुके हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. त्रितंत्री वीणा
2. सेनिया घराने
3. दो (मसीतखानी और रज़ाखानी गत)
4. दिर, दा, दिर दारा दा, दारा
5. जौनपुर के रजा खाँ
6. दो (पूरब बाज व पश्चिम बाज)
7. आलप्ति गान
8. आक्षिप्तिका
9. विदारी
10. चौबीस
11. 16 से 19
12. 'दा', आकर्ष

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
2. श्रीवास्तव, प्रो0 सतीश चन्द्र, सितार वादन भाग–1।
3. भटनागर, रजनी, सितार वादन की शैलियां, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
4. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्र, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धपि एवं भारतीय संगीत।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गायन एवं तंत्रकारी पद्धति को विस्तार पूर्वक समझाइये।
2. वादन में आलाप, जोड आलाप, जोड झाला, झाला आदि के विषय में लिखिए।

इकाई 5 – पाठ्यक्रम के रागों दरबारी, बसन्त, परज एवं शंकरा का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना तथा उनमें मसीतखानी/विलम्बित गत एवं रजाखानी/द्रुत गत को तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना।

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 रागों का परिचय, स्वर विस्तार, स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
5.3.1 राग दरबारी
5.3.2 राग बसन्त
5.3.3 राग परज
5.3.4 राग शंकरा
5.4 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े
5.4.1 राग दरबारी
5.4.2 राग बसन्त
5.4.3 राग परज
5.4.4 राग शंकरा
5.5 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े
5.5.1 राग दरबारी
5.5.2 राग बसन्त
5.5.3 राग परज
5.5.4 राग शंकरा
5.6 सारांश
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (BAMI(N)-302) की पांचवी है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के इतिहास (मध्यकाल के उपरान्त से आधुनिक काल तक) तथा थाट पद्धति के बारे में जान चुके होंगे। आप श्रुति एवं सांगीतिक शब्दों से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में आपको स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के बारे में बताया गया है। इसमें पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन दिया गया है जिससे आप रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे। राग में प्रयोग होने वाली मुख्य स्वर संगतियाँ जिनसे राग की स्थापना की जाती है, इस इकाई के माध्यम से आप उनको भी जानेंगे। चलन एवं अंग के आधार पर राग एक दूसरे से मिलते हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के विषय में जान सकेंगे। आप अपने पाठ्यक्रम के रागों को समझ सकेंगे और मिलते–जुलते रागों का अध्ययन कर एक दूसरे से अलग कर समझ सकेंगे, जो आपको रागों का सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करने में सहायक होगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप रागों का क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुतीकरण सफलता पूर्वक कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. स्वरवाद्य में तन्त्रकारी व गायन शैली के विषय में जान सकेंगे।
2. पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. स्वर समूह द्वारा रागों को पहचान सकेंगे।
4. रागों को एक दूसरे से पृथक कर पाएंगे।
5. रागों की सैद्धान्तिक व्याख्या एवं क्रियात्मक स्वरूप का सुन्दर तथा सफल प्रस्तुतीकरण कर सकेंगे।

5.3 रागों का परिचय, स्वर विस्तार, स्वर समूह द्वारा राग पहचानना

5.3.1 राग दरबारी

मृदु गमधनि तीखो रिखब अवरोहत ध न लाग।
रि–प वादी–संवादी तें कहत कानड़ा राग।। चन्द्रिकासार

मृदु गनी धमौ रिस्तु तीव्रोंऽशः पसहायकः।
गांधारांदोलनं यत्र कर्णाटः सा निशि स्मृतः।। चन्द्रिकायाम

इस राग की उत्पत्ति आसावरी थाट से मानी गई है। इस राग का वादी स्वर ऋृषभ तथा सम्वादी पंचम है। इस राग के आरोह में सातों स्वर एवं अवरोह में छ' स्वरों का प्रयोग होने के कारण इसकी जाति सम्पूर्ण–षाड़व है। यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसका गायन समय मध्य रात्रि है। इस राग का मुख्य चलन मन्द्र सप्तक तथा मध्य सप्तक में किया जाता है। इस राग के आरोह में गंधार स्वर दुर्बल है। तानों के जल्द व सरल रूप में तो कभी–कभी इसको बिल्कुल छोड़ देते हैं। गंधार स्वर में आन्दोलन इस राग में अत्यधिक विचित्रता पैदा करता है। अवरोह में धैवत को वर्ज्य करते हैं। इस राग को मियाँ तानसेन ने प्रचलित करके अकबर बादशाह को प्रसन्न किया था ऐसा कहा जाता है। इसमें निषाद और पंचम की संगति बहुत सुन्दर लगती है। यह अत्यधिक मधुर राग है। इस राग में ग, ध, नि स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग के समान अड़ाना राग है। दोनों राग आसावरी थाट से हैं किन्तु अड़ाना में दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं–आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद। अवरोह के स्वर दोनों के एक समान हैं परन्तु अड़ाना उत्तरांग प्रधान राग है तथा इसका कोमल गंधार चढ़ा हुआ है। जबकि दरबारी कान्हड़ा का गंधार श्रुतियों में उतरा है तथा धैवत में आन्दोलित होता है।

आरोह – नि़ सा, रे ग़ रे सा, म प, ध़, नि़ सां।
अवरोह – सां, ध़, नि़, प, म प, ग़, म रे, सा।।
पकड़ – ग़, रे रे, सा, ध़, नि़ सा, रे सा।
न्यास के स्वर – ग, ध, नि।
समप्रकृति राग – अड़ाना।

मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा, नि़ सा, रे सा, नि़ सा रे, ध़ नि़ प़, म़ प़ ध़ , नि़ सा, नि़ रे, सा।
2. सा, रे रे सा, नि़ सा रे ध़, नि़ प़, म़ प़ ध़, नि़ सा, ध़ नि़ सा।
3. नि़ सा रे, सा रे, सा ध़, रे सा, सा रे ग़, म रे सा, ध़ नि़ रे सा।
4. म प, ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प, नि़ म प, ग़, म रे सा ध़ नि़ सा।
5. सा नि़ ध़ नि़ सा रे ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प, नि़ नि़ प म प, ग़, म रे सा ध़, नि़ प़, म़ प़ ध़ नि़ सा।
6. म प ध़ नि़ सां, ध़ नि़ रें सां, रें रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, म प, ग़, म रे सा, ध़ नि़ सा रे सा।
7. सां रें ग़ं, मं रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, सां ध़, नि़ प, म प, ग़ म रे सा, ध़ नि़ सा, रे ग़, म रे सा।

स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा, ध़ नि़ सा रे, ग़, म रे सा।
2. म, रेसा ध़ , नि़ , प़, म़ प़ ध़ नि़ सा।
3. म प ध़, नि़ प, नि़ म प ग़, म रे सा।
4. ध़ नि़ सा रे, ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प।
5. सां ध़, नि़ प, म प, ग़ म रे सा।
6. नि़ सा रें, सां रें ग़ं, मं रें सां, ध़ नि़ सां।
7. रें रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, म प ध़ नि़ रें सां।

5.3.2 राग बसन्त

दो मध्यम कोमल रिखब, चढत न पंचम कीन्ह।
सम वादी संवादितें, यह बसन्त कह दीन्ह।। चन्द्रिकासार

यह पूर्वी थाट से उत्पन्न राग माना जाता है। इसमें दोनों मध्यम, ऋषभ व धैवत कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं। आरोह में रे व प स्वर वर्जित तथा अवरोह को सम्पूर्ण रखने से यह राग खिल जाता है। अतः इस राग की जाति औड़व–सम्पूर्ण है। वादी स्वर तार सां तथा सम्वादी मध्यम है। इसमें मध्यम को ललित अंग से अर्थात दोनों मध्यमों को साथ–साथ लेते हैं– सा म – मं म ग मं ध़ सां। यह उत्तरांग प्रधान राग है, अतः इसकी बढ़त मध्य सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होती है। मध्य सप्तक से तार सप्तक को जाते समय कोमल ऋषभ प्रयोग करते हैं– मं ध रें सां, किन्तु मध्य सप्तक के आरोह में ऋषभ का प्रयोग कभी नहीं होता। इसे परज राग से बचाने के लिए आरोह में अधिकतर निषाद लंघन कर जाते हैं। जैसे मं ध सां, मं ध़ रें सां। इसका गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है, किन्तु बसन्त ऋतु में हर समय गाया जाता है। अतः इसे मौसमी राग कहते हैं।

आरोह – सा ग मं ध़ रें सां
अवरोह – रें नि ध़ प, मं ग, मं ग रे़ सा
पकड़ – रे़ नि ध़ प, मं ग, मं ग, रे़ सा

मं ध़ रें सा, रें नि ध़ प, मं ग मं ऽ ग

न्यास के स्वर – ग, प, सां
सम्प्रकृति राग – परज, पूर्वी, पूरिया धनाश्री

स्वर विस्तार :–

1. सा, नि सा ग मं – ग मं ध़ मं ग मं ऽऽ ग मं ग रे़ सा
2. (नि) सा म – ग मं ध़ सां, नि ध़ प (प) मं ग मं ऽ ग मं ध़ मं ग रे़ सा
3. मं ध़ सां (सां) नि ध़ मं ध़ नि रें नि ध़ प मं ध़ रें सां, रें सां नि ध़ प मं ध़ मं ग मं ग रे़ सा।
4. (प) – मं ग मं ध़ सां, नि रें सां गं रे़ सा, नि रें नि ध़ प मं ध़ रे सां, नि ध़ प (प) मं ग ग मं ध़, मं – ग – मं ग़ रे़ सा,

मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. प मं ग मं ऽऽ ग
2. मं ध़ सां, रें सां
3. रें नि ध़ प मं ध़ मं ग मं ऽ ग
4. सा म – मं म ग, मं ध़ सां

स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा ग, मं ध़ प – – मं ग
2. मं ध सां नि ध़ प
3. रें नि ध़ प मं ग
4. (सां) नि ध़ प मं ध़ रें सां

5.3.3 राग परज

जहां कोमल धैवत रिखब, तीख गंधार निखाद।
द्वै मध्यममंडित परज, पसा संवादीवाद।। चन्द्रिकासार

इस राग की उत्पत्ति पूर्वी थाठ से मानी जाती है। इसमें रे, ध कोमल तथा दोनों मध्यम प्रयोग किए जाते हैं। अधिकतर तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में तथा शुद्ध मध्यम का अवरोह में होता है। जैसे – मं ध़ सां नि ध़ प मं ग म ग मं ग रे़ सा। इसका वादी स्वर षडज तथा पंचम संवादी है। इस राग के आरोह में रिषभ स्वर वर्जित होता है तथा अवरोह में सातों स्वर प्रयुक्त होते हैं। अतः इसकी जाति षाड़व–सम्पूर्ण है। इसकी जाति षाड़व–सम्पूर्ण मानी गई है लेकिन फिर भी कभी–कभी सप्तक के आरोहात्मक स्वरों में ऋषभ प्रयुक्त होता है। नि रें गं रें सां नि ध़ नि। यह उत्तरांग प्रधान राग है। इसका चलन मध्य सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होता है। इसकी चाल चपल है, इसलिए लोग इसमें विलम्बित ख्याल बहुत कम गाते हैं। राग परज को परमेल प्रवेशक राग कहा गया है, क्योंकि इसके बाद भैरव थाट के रागों का समय प्रारम्भ होता है। इसमें बसन्त और कलिंगड़ा का मिश्रण है। बसन्त पूर्वी थाट का तथा कलिंगड़ा भैरव थाट का राग है। राग परज, पूर्वी से भैरव थाट के रागों में प्रवेश कराता है। इसका गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है।

आरोह – नि़ सा ग मं प ध़ प, मं ध़ नि सां
अवरोह – सां नि ध़ प, मं प ध़ प ग म ग, मं ग रे़ सा
पकड़ – सां नि ध़ प, मं प ध़ प, ग म ग

न्यास के स्वर – ग प नि और सां
सम्प्रकृति राग – कलिंगड़ा और बसन्त

स्वर विस्तार :–

1. सा, नि॒ सा ग, मं ध॒ नि ऽ ध॒ प मं प ध॒ प ऽ ग म ग, मं ग रे॒ सा।
2. नि॒ सा, ग ऽ मं ध॒ नि ऽ सां, सां रें॒ सां, नि ध॒ नि मं ध॒ नि सां, (सां) नि ध॒ – प मं प ग म ग, मं ग रे॒ सा।
3. मं ध॒ – नि सां, निसांनि, नि ध॒ प, प मं ध॒ प मं प, ग म ग, मं ग रे॒ सा,
4. सां नि ध नि रें॒ नि ध॒ प, मं ध॒ नि सां, नि रें॒ गं ऽ रें॒ सां, सां नि ध॒ नि – – मं ध॒ (सां) नि ध॒ नि ध॒ – – प, (प) मं ग म ग, मं ग रे॒ सा।

मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. ध॒ प – ग म ग मं ग रे॒ सा।
2. मं ध नि सां – नि ध॒ नि।
3. सां रें॒ सा रें॒, नि सां नि ध॒ नि
4. नि ध॒ प, मं प ध॒ प, ग म ग।

स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. नि सा ग मं ध॒ नी – – ध॒ प।
2. मं ध॒ नि सां नि (सां) नि, नि ध॒ प।
3. सां रे॒ नि सां नि ध॒ प, ग म ग।
4. ग मं ध॒ नि – – नि ध॒ प, ग म ग।

5.3.4 राग शंकरा

थाट बिलावल प सा संवाद, औडव–षाडव रूप।
मध्यम वर्जित मध्य रात्रि, शंकरा राग अनूप ।।

यह बिलावल थाट का राग माना जाता है। इसमें आरोह में मध्यम और अवरोह में मध्यम व ऋषभ वर्जित है। यह औड़व–षाड़व जाति का राग है। शंकरा के आरोह को देखने से यह पता लगा सकते हैं कि धैवत का प्रयोग सीधा न होकर वक्र होता है। इस दृष्टि से आरोह की जाति में धैवत को नहीं माना जाना चाहिए। दूसरी ओर अगर हम आरोह में धैवत को नहीं मानते हैं तो केवल चार ही स्वर बचते हैं। नियमानुसार राग के आरोह या अवरोह में कम से कम 5 स्वर अवश्य होने चाहिए। इसलिए आरोह में धैवत को पाँच की संख्या पूरी करने के लिए किया गया है। अवरोह में गन्धार से सा तक आने में मींड का प्रयोग किया जाता है और रिषभ को अल्प रखा जाता है। इसका वादी स्वर गन्धार तथा सम्वादी निषाद है। यह उत्तरांग प्रधान राग है। अतः इसका चलन सप्तक के उत्तर अंग तथा तार सप्तक में अधिक होता है। प से गंधार को आते समय सर्वप्रथम रे का कण लेते है। जैसे – ग प ग रेसा ग सा इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसके समीप का राग बिहाग है, किन्तु बिहाग में मध्यम स्पष्ट होने के कारण दोनों राग एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

आरोह – सा ग प नि ध सां
अवरोह – सां नि प, नि ध सां, नि प ग प ग सा
पकड़ – सां नि प, नि ध सां, नि प, ग प ग सा

स्वर विस्तार :–

1. सा ग सा, (सा) नि़ प़ नि़ सा, प ग प ग़ सा।
2. ग ग–प, नि – – प ग प, नि ध सां (सां) नि प, ग प ग ऽऽ प ग़ सा,
3. प प सां – – सां रें सां, सा गं सां गं पं गं सां (सां) नि – – प, नि ध (सां) नि – – प ग प ग सा

मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. ग प ग सा।
2. ग प नि ध (सां) नि – प।
3. प ग – – प ग़ सा।

स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. प़ नि़ सा ग़ सा ग प।
2. नि ध सां नि – – प।
3. ग प नि, नि प।
4. सां नि – प ग प नि सां नि।

5.4 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े

5.4.1 राग दरबारी :–

आलाप :–

1. सा, नि़ सा रे, ध़ नि़ प, ध़ नि़ सा, सा ध़ नि़ रे सा।
2. सा, रे रे सा, ध़ नि़ सा रे, ग, म रे सा, ध़ नि़ सा।
3. रे रे सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे रे ग़, म रे, सा।
4. सा रे ग़, म प ध़, नि़ प, म प, नि़ प ग़ रे सा।
5. नि़ सा रे ग़, म प, ध़, नि़ सां, ध़, नि़ प, म प ग़, म रे सा।
6. सा रे ग़, म रे, म प ध़, नि़ प म प, ध़ नि़ प, म प ध़ नि़ सां नि़ सां रें, ध़ नि़ सां, ध़ नि़ प, ग़ ग़ म
   रे सा।
7. नि़ सा रे, ध़, नि़ सा रे ग़, म प, म प ध़, नि़ सां, रें गं, मं रें सां रें रें, सां, रें, ध़ नि़ प, म प ध़ नि़
   सां, ध़ नि़ प, ग़ म रे सा।

मसीतखानी गत
स्थाई

											रेरे	सा	निनि	सा	रे
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
ध़	नि़	प़	मप	ध़	निनि	सा	रे	गम	रे	सा,	गम	रे	सासा	नि	सा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
रे	रे	सा	निसा	ध़	निनि	सा	रे	गम	रे	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

अन्तरा

											मम	प	धध	नि	ध
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सा	सा	सा	गंमं	रे	सासा	धनि	प	गम	रे	सा,					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	रा					
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1. | गमरेसा निसारेसा धनिसारे गमरेसा | निपमप गमरेसा धनिरेसा मुखडा
   2 0

2. | निसारेसा | धनिरेसा गगगम रेरेरेसा निपमप | गमरेसा गमरेसा गमरेसा मुखडा |
   2 0

3. | | ममपग मरेसा– निसारेसा धनिप– | धनिसारे निरेसा– धनिसा– –निसारे |
   2 0

   | ध़––– –निसारे ध़––– –निसारे ध़ तिहाई
   3 ×

4. | सा रेरे नि सा ध़ निनि सा रे ग मम रे सा म पप ध नि |

×				
प धध नि सां	ध निनि सां रें	गं मंमं रें सा	नि पप म प	
2				
ग मम रे सा	म पप म म	रे सासा नि सा	ध – म पप	
0				
ग मम रे सा	नि सासा ध –	म पप ग मम	रे सा नि सा	ध
3				×

तोडे – अठगुन लय

5.	रेरेसारेरेसानिसा	गमरेगमरेसारे	मपधनिपपमप	धनिसांधनिसांनिसां	
	×				
	रेंरेंसांरेंरेंसानिसां	गंमंरेंगंमंरेंसांरें	धनिपधनिपमप	गमरेगमरेसारे	
	2				
	धनिसाधनिसारेसा	ममरेगमरेनिसा	रेरेसानिसारेनिसा	ध–––मरेग	
	0				
	मरेनिसारेरेसानि	सारेनिसाध–––	ममरेगमरेनिसा	रेरेसानिसारेनिसा	ध
	3				×
6.	गमगमरेसानिसा	मपमपगमरेसा	धनिधनिमपगम	निसानिसारेसानिसा	
	×				
	गंमंगमंरेंसांनिसां	रेंरेंरेंसानिसारेंसां	सांसांसांनिधनिपप	निनिनिधनिपमप	
	2				
	धधधनिपपमप	मममगमरेगम	रेरेरेसानिसारेसा	गगगमरेसानिसा	
	0				
	ध–ध–ध–––	गगगमरेनिसा	ध–ध–ध–––	गगगमरेसानिसा	ध
	3				×

5.4.2 राग बसन्त :–

आलाप :–

1. मं ध रें सां, नि सा नि ध प, मं ध नि ध प, मं ग, मं ग रे सा।
2. सा म ग म मं म ग, मं ध नि मं ध रें सां, नि ध मं ध सा।
3. नि ध प मं प मं ग, ग मं नि ध मं ग मं ग रे सा।
4. सा म म मं म ग, मं ध रे, नि ध, मं ध रें सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

										पप	मं	गग	मं	ध	
										दिर	दा	दिर	दा	राऽ	
रें	सा	सा	निध	प	पमं	ग	मं	ग	रे	सा,	गरे	निध	प	मं	ध
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ
रें	सा	सा	म	मं	म	ग	मं	ग	रे	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
×				2				0				3			

अन्तरा

										धध	म	ग	मं	ध	
										दिर	दा	दिर	दा	राऽ	
रें	सां	सां	मंगं	रें	सासा	नि	ध	प	मंग	रेसा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
										पप	मं	गग	मं	ध	
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लय

1. मंधनिध पऽमंप मंगमंग रेंसांनिसां | मंधरेंरें सांऽनिसां निधपऽ मुखडा

2 0

2. | रेंसांनिसां निधपऽ पऽमंप मंगरेसा | सामममं गऽमंग मंधरेंसां मुखडा

2 0

तोडे – छःगुन लय

3. | पपमंपमंग मंगरेसानिसा सामममंमग मंधनिधनिरें | गंरेंसारेंसांनि सांनिधनिधप मंधरेंरेंसाऽ मुखडा

2 0

4. | **तोडे – अठगुन लय**

सागमंगमंगरेसा मंधमंधनिधपप मंगमंगरेसानिसा सामऽमऽममंग |

2

| मंधमंधरेरेरेसांऽ निधपऽमंगरेसा धरेंसांऽनिनिसाऽ मुखडा

0

5.4.3 राग परज :–

आलाप :–

1. सा, नि़, नि रे सा, नि़ सा नि़..... रे ग रे सा –
2. नि़, ग रे ग, रे ग मं, मं ग, रे सा नि़, रे सा।
3. नि़, रे ग मं, ग, मं प ऽ ग म ग, मं ग रे सा।
4. मं ध नि सां ऽ ऽ नि ध नि, ग मं ध नि, सां रें नि सां नि ध नि, नि रें गं ऽ रें सा नि ध नि, मं ध

(सा) नि ध नि ऽ ध प ऽ ग म ग, मं ग रे सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

															पप
															दिर
मं	धध	नि	सांनि	सां	नि	नि	धध	प	मंमं	ग	मंध	मं	गरे	सा,	निसा
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर
ग	मग	मं	धध	प	पप	मं	मं	ध	निनि	ध	मंध	मं	गरे	सा,	
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	

3 × 2 0

अन्तरा

																		मं॑मं॑	
																		दिर	
प	मं॑मं॑	ध	निसां	नि	नि	सां	निरें	गं	रेंसां	नि	धप	मं	गरे	सा,	गंगं				
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर				
रें	सांसां	रें	निध	नि	धध	प	मंध	नि	धध	प	मंध	मं	गरे	सा,					
दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा					
3				×				2				0							

तोडे – चौगुन लय

1. | निसागमं पमंपगमं गरेसासा गमंपध | मंपगमं धनिधप मंधनिसां निधपमं |
   2 0
   धपमंप मंगरेसा गमंपध मंधनिसां | नि
   3 ×

2. गगरेनि रेगमंप धधपमं धनिसांनि | सांनिधनि सांनिधप मंगरेसा मुखडा़ .
   2 0

3. | मंगमंप धपमंप निधपमं सांनिधप | निधपमं धपमंग पमंग– मुखडा़
   3 ×

तोडे – छःगुन लय

4. | गमंगमंपमं धपधपमंप मधनिधपमं धनिसांरेंसांनि |
   2
   | गंरेंसांनिधप रेंसांनिधपमं सांनिधपमंग निधपधपमं |
   0
   | पमंगमंधध नि––पमंग मंधधनि–– पमंगमंधध | नि
   3 ×

5. | गमंरेसानिसा मंमंगरेगमं पपमंगमंध निनिधमंधनि |

×

रेंरेंसांनिसांनि	गेंरेंसांरेंसांनि	सांनिधनिधप	मंगरेसानिसा	
2				
गगरेमंमंग	पमंगमंधध	नि–––––	गगरेमंमंग	
0				
पमंगमंधध	नि–––––	गगरेमंमंग	पमंमंधधध	नि
3				×

तोड़े – अठगुन लय

6.

गगरेसानिरेगमं	मंमंगरेसगमंप	पपमंगरेगरेगमंप	धधपमंगमंपध	
2				
निनिधपमंधनिसां	गंगंरेंसांनिनिधप	मंमंगमधसांनिसां	नि–––मंमंगमं	
0				
धसांनिसांनि–––	मंमंगमंधसांनिसां	गंगंरेंसांनिनिधप	मंमंगमधसांनिसां	नि
3				×

7.

मंमंगमंमंगरेसा	पपमंपपमंगरे	धधपधधपमंग	निनिधनिनिधपमं	
×				
संसंगंरेंसांनिधप	निनिरेंरेंनिधपमं	धधसांसांनिधपमं	पमंगमंगरेसासा	
2				
पपमंगमंधप–	मधपधमंधनिसां	नि–––––––	पपमंगमंधप–	
0				
मंधपधमंधनिसां	नि–––––––	पपमंगमंधप	मंधपधमंधनिसां	नि
3				×

5.4.4 राग शंकरा :–

आलाप :–

1. सा ग प, प ग प ऱेग सा, ग प नि ध सां नि प।
2. नि ध सां नि प, ग प सां नि प, सा ग प नि ध सां।
3. सां गं पं ऱेगं सां, नि ध सां नि प, प ग प ऱेग सा।

मसीतखानी गत

स्थाई

												निसां	नि	पप	गप	निसां
												दिर	दा	दिर	दा	राऽ
नि	नि	प	पप	ग	गग	प	गप	ऱेग	ग	सा,	निसा	नि	पप	नि	सा	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	
ग	ग	सा	पप	ग	गग	प	गप	ऱेग	ग	सा,						
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,						
3				×				2				0				

अन्तरा

												पप	ग	पप	नि	नि
												दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	सां	सां	गंपं	गं	गं	सा	गप	ग	ग	सा,						
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा						
3				×				2								

तोडे – चौगुन लय

1. पऽपप गपगसा नि़प़नि़सा गगसाऽ | प पप ग प गरेसाऽ निऽसाऽ मुखडा
   2 0
2. नि़प़नि़नि़ साऽसाऽ गपगरे साऽसाऽ | निधसाऽ निपगप गरेसाऽ मुखडा
   2 0
3. सासागग पऽपप गगपऽ गरेसाऽ | नि़प़नि़सा गरेसाऽ गरेसाऽ मुखडा
   2 0

तोडे – छःगुन लय

4. | प़प़प़नि़नि़नि़ | सासासागगसा | गगगपपप | गपगरेसाऽ |
   2
   | गपनिधसांऽ | निपगरेसाऽ | प़प़नि़नि़साऽ | मुखडा़ |
   0

5. | सासागगपप | गगरेरेसाऽ | नि़प़नि़सागसा | पपगपगसा |
   2
   | सानिपनिपग | सानिपनिपग | सानिपनिपग | तिहाई, मुखडा |
   0

6. | गगगगरेसा | निनिनिनिपग | सासासासानिप | गगगरेसाऽ |
   2
   | गपनिधसांऽ | गपनिधसांऽ | गपनिधसांऽ | तिहाई, मुखडा |
   0 ×

तोड़े – अठगुन लय

7. | प़नि़प़नि़सारेनि़सा | नि़सानि़सागगप | गगपऽगरेसाऽ | पपगपगरेसाऽ |
   2
   | निधसांनिनिनिनिप | निधसांनिनिनिप | निधसांनिनिनिप | तिहाई, मुखडा |
   0

अभ्यास प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में मसीखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

5.5 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े

5.5.1 राग दरबारी कान्हड़ा :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

रे	रे	सा	ध़	–	नि़	सा	रे	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि़	सा
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	ऽ	दाऽ	रदा	ऽरा	दा
नि़	सा	रे	रे	ग	–	म	प	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि़	सा
दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	रा	ऽ	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽरा	दा
×				2				0				3			

अन्तरा

म	म	प	ध	–	नि	सां	नि	सां	–	रें	रें	गं	मं	रें	सां
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
नि	सां	रें	ध	नि	सां	नि	प	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि़	सा
दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽरा	दा
×				2				0				3			

तोड़े (4 मात्रा) :–

1 | गम रेसा धनि़ सां |
2

2 | मप धनि़ पम गम |
2

3 | पनि़ मप गम रेसा |
2

तोड़े (6 मात्रा) :–

4 निप मप | गम रेसा धनि़ रेसा |

			2				
5	मप	धनि	| प–	मप	गम	रेसा	|
			2				

तोड़े (8 मात्रा) :–

6	| सारे	ग–	मप	ध–	| निप	मप	गम	रेसा	|
	×				2				
7	| सारे	गम	प–	मप	| धनि	पम	गम	रेसा	|
	×				2				
8	| मप	धनि	सां–	धनि	| प–	मप	गम	रेसा	|
	×				2				

तोड़े (16 मात्रा) :–

9	| धनि़	सारे	गम	रेसा	| मप	धनि	सारें	नि़सा	|
	0				3				
	| धनि	प–	मप	गम	| रेसा	नि़सा	ध़नि़	सा–	|
	×				2				
10	| गम	रेसा	मप	धनि	| सारें	सां–	निसां	रेंसां	|
	0				3				
	| धनि	सारें	निसां	निप	| मप	गम	रेसा	नि़सा	|
	×				2				
11	| नि़सा	रेंसां	धनि	मप	| धनि	सांध	निप	मप	|
	0				3				
	| मप	धनि	पग	मरे	| प–	गम	रेसा	नि़सा	|
	×				2				

तोड़े (32 मात्रा) :–

12	गम	गम	रेसा	निसा	मप	मप	गम	रेसा	
	×				2				
	धनि	सांध	निप	मप	गम	गम	रेरे	सा–	
	0				3				
	गम	रेसा	रे–	सारे	ग–	––	गम	रेसा	
	×				2				
	रे–	सारे	ग–	––	गम	रेसा	रे–	सारे	ग
	0				3				×
13	धनि	साध	निसा	रेसा	पध	निप	धनि	मप	
	×				2				
	निसा	रेंनि	सारें	निसां	धनि	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	मप	धनि	सां–	सारे	ग–	––	मप	धनि	
	×				2				
	सां–	सारे	ग–	––	मप	धनि	सां–	सारे	ग
	0				3				×
14	सारे	सारे	गम	प–	मप	मप	धनि	सां–	
	×				2				
	निसां	निसां	धनि	प–	मप	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	सारे	सारे	ग–	सारे	ग–	––	सारे	सारे	
	×				2				
	ग–	सारे	ग–	––	सारे	सारे	ग–	सारे	ग
	0				3				×

5.5.2 राग बसन्त :–

रज़ाखानी गत

स्थाई

											मं	ग	मं	—	ध
											दा	रा	दा	ऽ	रा
रे	—	सा	—	नि	ध	प	—	ग	मं	ग	मं	ग	रे	—	सा
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	ऽ	रा
म	—	म	मं	मं	मं	ग	—	रे	रे	सा,	मं	ग	मं	—	ध
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	ऽ	रा
×				2				0				3			

अन्तरा

								मं	ग	मं	ध	रे	रे	सा	—
								दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ
नि	ध	प	—	ग	मं	ग	—	रे	रे	सा,	मं	ग	मं	—	ध
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा					
×				2				0				3			

तोड़े (सम से 4 मात्रा बाद) :–

1	मंग	मंध	रेंरें	साऽ	मंग	रेरे	सा—	मुखडा
2	रेंसां	निसां	निध	प—	मंमं	धध	सा—	मुखडा
3	गम	धध	मंध	श्रेंरें	सांनि	धप	मंग	मुखडा

तोडे (सम से) :–

4	गमं	धध	मंध	निनि	धध	रेंरें	साऽ	निसा
	पमं	गरे	गऽ	मुखडा				

सम से (मुखडे कि तिहाई) :–

5	मंध	पमं	गमं	ग्रे	सा–	गमं	ग–	गमं
	ग–	गमं	ग–	मुखडा				
6	रेंसा	निसां	मंग	मंग	रेसा	निसा	साम	–म
	गमं	गऽ	रेसा	मुखडा				
7	सांनि	रेंसां	पमं	धप	सानि	रेंसा	गमं	धध
	मंध	रेरे	साऽ	मुखडा				
	0				3			

5.5.3 राग परज :–

रजाखानी गत

स्थाई

प	मं	ग	मं	–	ध	नि	सां	नि	–	ध	प	मं	प	ग	म
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2			
नि़	रे	ग	मं	प	मं	ध	प	मं	ध	नि	सां	नि	ध	प	मं
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2			

अन्तरा

मं	ग	म	ध	मं	ध	नि	सां	नि	–	ध	प	मं	मं	ग	मं
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2	0		
ध	नि	रें	नि	–	ध	मं	ध	नि	ध	प	मं	ग	रे	सा	–
दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
0				3				×				2			

तोडे (8 मात्रा) :–

1	निध	पमं	धप	मंप	गमं	गरे	नि़रे	सा–
2	सांनि	धनि	धप	मंप	निध	पमं	गरे	सा–
3	धनि	सांनि	धप	मंप	धप	मंप	मंग	रेसा

तोडे (16 मात्रा) :–

4	निरे	गमं	पमं	पध	मंध	निसां	निध	पमं

	मंध	निध	निसा	निध	पमं	गमं	गरे	सा–
5	गरे	गमं	पध	निध	निध	पमं	गमं	स–
	मंध	निसां	नि–	मंध	निसां	नि–	मंध	निसां

तोडे (32 मात्रा) :–

6	नि–	सांनि	रेंसा	निसां	नि–	धप	मंप	धप
	मंध	निसां	रेरे	सांनि	धनि	धप	मंध	पमं
	गरे	सा–	गमं	धनि	सां–	नि–	गरे	सां–
	धनि	सां–	नि–	गरे	गमं	धनि	सां–	नि–

5.5.4 राग शंकरा :–

रजाखानी गत

स्थाई

											ग	प	नि	ध	सां
											दा	ऽ	दा	रा	रा
नि	–	प	–	ग	ग	८	–	ग	–	सा,	नि़	प़	नि़	–	सां
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	छा	ऽ	दा	ऽ	दा,	दा	ऽ	दा	रा	रा
ग	–	सा	–	गप	निसा	थ्नप	गप	गरे	सानि़	सा,					
दा	ऽ	दा	ऽ	दा	ऽ	छा	ऽ	दा	ऽ	दा,					
0				3				×				2			

<u>अन्तरा</u>

ग	ग	प	–	नि	नि	सं	–	गं	गं	पं	–	गं	–	सां	–
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	छा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	ऽ	रा	रा
नि	ध	सां	–	नि	–	ट	–	गप	गरे	सा					
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	छा	ऽ	दा	रा	दा					
0				3				×				2			

<u>तोड़े (सम से 4 मात्रा बाद)</u>

1	निध	सांऽ	निप	गऽ	गप	गरे	साऽ	मुखडा
2	सासा	गग	पप	निध	निप	गप	गऽ	मुखडा
3	ऩिसा	गऽ	साग	पऽ	गप	गरे	साऽ	मुखडा
4	सांनि	सांसां	निप	गप	गप	गरे	साऽ	मुखडा
5	पनि	साग	रेसा	निप	गग	पऽ	ऩिसा	मुखडा
6	पसां	निरें	सांनि	धप	गप	निनि	साऽ	मुखडा

<u>तोडे (सम से) :–</u>

7	सासा	गग	पप	गप	गप	गरे	सानि	साऽ
	पनि	सारे	साऽ	मुखडा				

8	निसा	गसा	गप	गप	निसा	गरे	सानि	साऽ
	रेंसां	निरें	साऽ	मुखडा				
9	सानि़	साग	पऽ	गप	पनि	सांगं	रेंसां	निसां
	गप	निध	साऽ	मुखडा				
10	सांनि	रेंसां	पग	धप	सानि़	रेंसा	गप	धध
	पध	रेरे	साऽ	मुखडा				

5.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके हैं। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वर, राग का वादी, सम्वादी, राग के पकड़ स्वर एवं राग के मुख्य स्वर समुदाय जिनके द्वारा राग को एक दूसरे से अलग करके पहचाना जा सकता है इन सबका ज्ञान भी आप प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में आपने अंगों के आधार पर तथा राग के चलन के आधार पर समान प्रकार के रागों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया, जिससे आप एक राग से दूसरे राग को पृथक कर उसके सैद्धान्तिक स्वरूप को भी समझ चुके होंगे और इसके साथ रागों को क्रियात्मक रूप में सफलता पूर्वक प्रस्तुत कर सकेंगे। स्वर समूहों द्वारा राग पहचानना का अध्ययन भी आपने इस इकाई में किया है जिससे आप स्वर समूह को पढ़कर तथा सुनकर रागों को पहचान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाठ्यक्रम के रागों को पूर्ण रूप से समझ सकेंगे एवं उसके सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकने में सक्षम होंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

5.7 अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. दरबारी राग ..... थाट से उत्पन्न माना गया है।
2. राग परज का वादी स्वर ..... तथा संवादी स्वर ..... है।
3. राग शंकरा का गायन समय रात्रि का ..... प्रहर है।

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. दरबारी राग का पूर्ण परिचय दीजिए।
2. परज राग का पूर्ण परिचय दीजिए।
3. शंकरा राग का पूर्ण परिचय दीजिए।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. आसावरी थाट
2. वादी स्वर सा तथा संवादी स्वर प
3. रात्रि का दूसरा प्रहर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1–6, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. झा, पं0 रामाश्रय 'रामरंग', अभिनव गीतांजली।
4. श्रीवास्तव, सतीश चन्द्र, सितार वादन भाग–1।
5. भटनागर, रजनी, सितार वादन की शैलियां, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
6. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्र, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धपि एवं भारतीय संगीत।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं चार रागों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 6 – पाठयक्रम की तालों पंचम सवारी एवं 9 मात्रा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना एवं पाठयक्रम की तालों पंचम सवारी एवं 9 मात्रा ताल के ठेके को दुगुन, तिगुन, चौगुन एवं आड़ लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 तालों का परिचय
6.3.1 पंचमसवारी ताल का परिचय
6.3.3 9 मात्रा ताल का परिचय
6.4 तालों को लयकारीयों में लिखना
6.4.1 पंचमसवारी ताल को विभिन्न लयकारियों में लिखना
6.4.3 9 मात्रा ताल को विभिन्न लयकारियों में लिखना
6.5 सारांश
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम BAMI(N)-302 की छठी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के उपरान्त आप भारतीय संगीत के इतिहास (विशेष रूप से आधुनिक काल) के विषय में बता सकते हैं। आप ताल रचना के सिद्धान्त एवं समान मात्राओं की तालों का संगीत में प्रयोग इस विषय को भी भली भांती जान गए होंगे। दक्षिण भारतीय संगीत के विषय में भी जान चुके होंगे। साथ ही कुछ महान तबला वादकों के जीवन परिचय से भी परिचित हो गए होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों का परिचय व उनके ठेकों को विभिन्न लयकारी (दुगुन, तिगुन, चौगुन एवं आड़) में लिपिबद्ध करने के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने के विषय में जान सकेंगे। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. लयकारी का ज्ञान प्राप्त होगा।
2. तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पाएंगे।
3. लयकारी का प्रयोग अपने वादन (एकल वादन एवं संगत) करने में सक्षम होंगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा।

6.3 तालों का परिचय

6.3.1 पंचमसवारी ताल का परिचय – इस ताल को सिर्फ सवारी ताल के नाम से भी जाना जाता है। यह सवारी ताल के प्रकारों में से एक है। 'भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन' के लेखक डॉ0 अरूण कुमार ने 18 प्रकार की सवारी बताई हैं–कैद सवारी, कुर्क सवारी, तृतीय सवारी, चतुर्थ सवारी, पंचम सवारी, षष्ठ सवारी, सप्तम सवारी, चंपक सवारी, शेर की सवारी, बड़ी सवारी, मर्दानी सवारी, जनानी सवारी, सीता सवारी, छोटी सवारी, बसारी सवारी और मंजरी सवारी आदि। किन्तु किसी भी ग्रन्थ में पंचमसवारी, जिसे सवारी के नाम से भी जाना जाता है को छोड़कर अन्य किसी भी सवारी के प्रकारों का विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। विषम ताल होने के कारण इसकी गिनती कठिन तालों में की जाती है। यह तीनताल, एकताल, झपताल आदि तालों की अपेक्षा कम लोकप्रिय है। शास्त्रीय संगीत की विलम्बित रचनाओं के साथ पंचम सवारी प्रयोग की जाती है। पंचमसवारी द्रुत व अति द्रुत लय में भी बजाई जाती है अतः इसका प्रयोग गायन में द्रुत ख्याल व वादन में द्रुत गत में किया जाता है। तबले पर एकल वादन हेतु भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस ताल में उठान, पेशकार, कायदे, रेला, गत, परन, चक्करदार, टुक्ड़े, तिहाईयां आदि बजाए जाते हैं।

पंचमसवारी के ठेके के भिन्न–भिन्न प्रकार मिलते हैं। यह चार विभाग की 15 मात्रा की विषम पदीय ताल है। इसमें पहले विभाग में तीन एवं अन्य विभाग चार चार मात्राएं हैं। इसकी संरचना निम्न प्रकार हैः–

मात्रा – 15, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 12 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धी ना धीधी	कत धीधी नाधी धीना	तीक तीना तिरकिट तूना
×	2	0

कता धीधी नाधी धीना	धि
3	×

6.3.3 9 मात्रा ताल का परिचय – नौ मात्रा की ताल एक अप्रचलित ताल है, इस ताल का प्रयोग तबले में एकल वादन हेतु किया जाता है। इस ताल के ठेके के निश्चित बोल नहीं होते हैं। इसमें तबला वादक अपनी सुविधानुसार ठेके के बोलों का निर्माण कर लेता है। इस नौ मात्रा की ताल में नौ विभाग होते हैं एवं प्रत्येक विभाग एक–एक मात्रा का होता है। विभाग मात्रा का समूह होता है अतः एक मात्रा का विभाग होना तर्क संगत नहीं लगता है। इसकी संरचना निम्न प्रकार हैः–

मात्रा – 9, विभाग – 9, ताली – 1,2,3,4,6 व 8 पर, खाली – 5,7 व 9 पर

ठेका

धि।	तिरकिट ।	तू ।	ना ।	कत ।	ता ।	कता ।	धी धी ।	ना धी ।	धी ना
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

इसमें पहली मात्रा पर सम, दूसरी, तीसरी, चौथी मात्रा पर ताली, पांचवी मात्रा पर खाली, छः पर ताली, सात पर खाली, आठ पर ताली एवं नौ पर खाली है।

पखावज वादकों द्वारा इस ताल में एकल वादन प्रस्तुत किया जाता है। तबला वादकों द्वारा भी एकल वादन नौ मात्रा में प्रस्तुत किया जाता है जिसके लिए तबला वादकों द्वारा तबले पर बजाने के लिए ठेका बनाया जाता है। वाद्यों पर नौ मात्रा की रचनाएं बजाई जाती हैं जिसमें रचना

के अनुसार ही तबला वादक द्वारा ठेके की रचना की जाती है। उदाहरण स्वरूप कुछ तबले के ठेके निम्न प्रकार से हैं:–

1. धिं ना तिरकिट तू ना कता धिन कधा तिरकिट
2. धिं तिरकिट धिं ना तू ना कता धिंकतऽ ऽकधि ताऽकऽ
3. धिं ना धिं धिं ना तिं धिंधिं नाधिं धिनां

6.4 तालों को लयकारियों में लिखना

लयकारी – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होने वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई हैं– विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम होने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता है एवं द्रुत लय का विश्रांति समय मध्य लय के विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी। अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड, एवं बिआड प्रयोग की जाती हैं।

दुगुन – एक मात्रा में दो मात्रा — 1 2 1 2

तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्रा — 1 2 3 123

चौगुन – एक मात्रा में चार मात्रा — 1234 1234

आड़ – एक मात्रा में डेढ़ मात्रा अथवा दो मात्रा में तीन मात्रा को आड़ लयकारी कहा जाता है। इसे डयोड़ी लय भी कहते हैं एवं इसको 3/2 की लयकारी के रूप में व्यक्त करते हैं। — 1 S 2 S 3 S

कुआड़– इस लयकारी के विषय में दो मत हैं 1. आड़ की आड़ को कुआड़ कहते हैं अतः 9/4 जिसके अनुसार चार मात्रा में नौ मात्रा अथवा एक मात्रा में $2\frac{1}{4}$ अथवा सवा दो मात्रा का प्रयोग करते हैं। 2. 5/4 की लयकारी अर्थात चार मात्रा में पांच मात्रा अथवा एक मात्रा में सवा मात्रा। इस दूसरे मत का अधिक प्रचलन है एवं इसको सवागुन की लय भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार–:

1S S S 2S S S 3 S S S 4 SS S 5 S S S 6 S S S 7 S S S 8 S S S 9 S S S

1 2 3 4

दुसरे मत के अनुसार :–

1 S S S 2 S S S 3 S S 4 S S S 5 S S S

1 2 3 4

<u>**बिआड़**</u> – इस लयकारी के विषय में भी दो मत हैं। एक मत के अनुसार कुआड़ लय की आड़, बिआड़ लयकारी होती, जिसे ${}^{9}/_{4} \times {}^{3}/_{2} = \frac{27}{8}$ के रूप में व्यक्त करते हैं। दूसरे मत के अनुसार ${}^{7}/_{4}$की लयकारी बिआड़ की लयकारी है। इसमें एक मात्रा में पौने दो गुन मात्रा प्रयोग की जाती है जिसे पौने दो गुन की लयकारी भी कहते हैं।

<u>पहले मत के अनुसार</u> :–

1ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 10 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 11

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 12 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 13 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 14 ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ ऽ ऽ 15 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 16 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 17 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ 18 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 19 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 20 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 21 ऽ

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 22 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 23 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 24 ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ ऽ 25 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 26 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 27 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

<u>दूसरे मत के अनुसार</u> :–

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ , ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽ , ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ 6, ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ

कुआड़ एवं बिआड़ में दूसरा मत ही अधिक प्रचलित एवं व्यवहारिक है अतः लयकारी लिपिबद्ध करने में दूसरे मत का ही प्रयोग करेंगे। आड़, कुआड़ एवं बिआड़ लयकारी लिखने के लिए इनकी भिन्न अथवा बटे में दिखाई संख्या से भाग देते हैं। गणित के अनुसार भाग देने में बटे की संख्या उलटी हो कर गुणा में बदल जाती है।

उदाहरण आड़ की बट्टा संख्या 3/2 = $1\frac{1}{2}$

आड़ **लयकारी की मात्रा संख्या =** ताल की मात्रा × 2/3, किस मात्रा से आरम्भ की जानी है, इसके लिए उपर की संख्या को ताल की मात्रा संख्या से घटाते हैं।

ताल की मात्रा संख्या = ताल की भाग संख्या × 2/3 जो लयकारी लिखनी है। उसमें बट्टा के नीचे वाली राशी में से एक घटाकर उतनी संख्या के अवग्रह लगाते हैं।

उदाहरण– आड़ की लयकारी – ${}^{3}/_{2} = \quad 2-1 = \quad 1$

कुआड़ की लयकारी– ${}^{5}/_{4} = \overrightarrow{4-1} = 3$

बिआड़ की लयकारी – ${}^{7}/_{4} = \overrightarrow{4-1} = 3$

अतः आड़ की लयकारी को मात्रा के साथ एक अवग्रह, कुआड़ एवं बिआड़ की लयकारी में तीन अवग्रह लगाते हैं। इसके पश्चात बट्टा की उपर वाली राशि में विभाग बना लेते हैं। सरलता के लिए पीछे से विभाग बनाना शुरू करते हैं एवं पहली मात्रा में जितनी मात्रा कम होती हैं, मात्रा से पहले उतने अवग्रह लगा देते हैं जो कि आप विभिन्न तालों में लयकारी के उदाहरण से समझेंगे।

6.4.1 पंचमसवारी ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना :–

पंचमसवारी ताल

मात्रा – 15, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 12 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धी ना धीधी	कत धीधी नाधी धीना	तीक तीना तिरकिट तूना
×	2	0

कता धीधी नाधी धीना	धि
3	×

पंचमसवारी ताल की दुगुन :–

धीना धीधीकत धीधीनाधी	धीनातीक तीनातिरकिट तूनाकत्ता धीधीनाधी
×	2

धीनाधी नाधीधी कत्तधीधी नाधीधीना	तीकतीना तिरकिटतूना कत्ताधीधी नाधीधीना	धी
0	3	×

पंचमसवारी ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

1 धी नाधीधी कत्तधीधी नाधीधीना	तीकतीना तिरकिटतूना कत्ताधीधी नाधीधीना	धी
0	3	×

पंचमसवारी ताल की तिगुन :–

धीनाधीधी कतधीधीनाधी धीनातीक्रतीना	तिरकिटतूनाकत्ता धीधीनाधीधीना
×	2

धीनाधीधी कत्तधीधीनाधी	धीनातीक्रतीना तिरकिटतूनाकत्ता धीधीनाधीधीना
	0

धीनाधीधी	कतधीधीनाधी धीनातीक्रतीना तिरकिटतूनाकत्ता धीधीनाधीधीना	धी
	3	×

पंचमसवारी ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

धीनाधीधी	कतधीधीनाधी धीनातीक्रतीना तिरकिटतूनाकत्ता धीधीनाधीधीना	धी
0	3	×

पंचमसवारी ताल की चौगुन :–

धीनाधीधीकत धीधीनाधीधीनातीक तीनातिरकिटतूनाकता	धीधीनाधीधीना नाधीधीकतधीधी?
×	2

नाधीधीनातीक्रतीना तिरकिटतूनाकताधीधी	नाधीधीनाधीना धीधीकतधीधीनाधी धीनातीक्रतीनातिरकिट
	0

तूनाकताधीधीनाधी	धीनाधीनाधीधी कतधीधीनाधीधीना तीक्रतीनातिरकिटतूना कत्ताधीधीनाधीधीना	धी

3 ×

पंचमसवारी ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

1धीनाधीधी	कतधीधीनाधीधीना	तीक्रतीनातिरकिटतूना	कत्ताधीधीनाधीधीना	धी
3				×

पंचमसवारी ताल की आड़ लयकारी :–

धीऽना	ऽधीधी	कतधी	धीनाधी	धीनाती	
		0			
क्रतीना	तिरकिटतू	नाकता	धीधीना	धीधीना	धी
	3				×

6.4.2 9 मात्रा ताल को विभिन्न लयकारीयों में लिखना :–

बसंत ताल

मात्रा – 9, विभाग – 9, ताली – 1,2,3,4,6 व 8 पर, खाली – 5,7 व 9 पर

पखावज पर बजाए जाने वाला ठेका

धा।	धेत्त ।	धेत्त ।	थुं ।	थुं ।	तिट ।	कता ।	गदी ।	गिन ।	धा
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

तबले पर बजाए जाने वाला ठेका

धि	ना	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धिं	ना	धि
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

9 मात्रा ताल की दुगुन :–

धिना	तिरकिटतू	नाक	ताधि	नाधि	नातिरकिट	तूना	कता	धिना	धि
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

9 मात्रा ताल की दुगुन एक आवर्तन में – एक आवृति की दुगुन $9/2 = 4\frac{1}{2}$ मात्रा की होगी।

5	6	7	8	9	
ऽधि	नातिरकिट	तूना	कता	धिना	धि
0	5	0	6	0	×

9 मात्रा ताल की तिगुन :–

धिनातिरकिट	तूनाक	ताधिना	धिनातिरकिट	तूनाक	ताधिना	धिनातिरकिट	तूनाक	ताधिना	धि
×	2	3	4	0	5	0	6	0	×

9 मात्रा ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

7	6	8	
धिनातिरकिट	तूनाक	ताधिना	धि
0	6	0	×

9 मात्रा ताल की चौगुन :–

धिनातिरकिटतू	नाकताधि	नाधिनातिरकिट	तूनाकता	धिनाधिना
×	2	3	4	0
तिरकिटतूनाक	तधिनाधि	नातिरकिटतूना	कताधिना	धि
5	0	6	0	×

9 मात्रा ताल की चौगुन एक आवर्तन में – एक आवृति की चौगुन $^{9}/_{4} = 2\frac{1}{4}$ मात्रा की होगी एवं $6\frac{3}{4}$ मात्रा के बाद आरम्भ कर सम पर आएगी।

7	8	9	
ऽऽऽधि	नातिरकिटतूना	कताधिना	धि
0	6	0	×

9 मात्रा ताल की आड लयकारी – $9 \times {}^{2}/_{3} = 6$ मात्रा की होगी।

4	5	6	7	8	9	
धिऽना	ऽतिरकिट	तूऽना	ऽकऽ	ताऽधिं	ऽनाऽ	धि
4	0	5	0	6	0	×

6.4.4 अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. डॉ0 अरूण कुमार ने ..... प्रकार की सवारी बताई हैं।
2. पंचमसवारी में ....,..... व..... मात्राओं पर ताली है।
3. 9 मात्रा ताल..... वाद्य की ताल है।
4. 11 मात्रा की ताल में तीसरी मात्रा पर ..... आती है।

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी(दुगन, तिगुन, चौगुन व आड) में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप लयकारी को भली–भांति समझ चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन व संगत) में करने में सक्षम होंगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे। आप तबले की तालों के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पाएंगे।

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. 18 2. 1, 4 व 12 पर 3. तबले 4. खाली

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. मिश्र, पं0 विजयशंकर, तबला पुराण।
3. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, ताल परिचय, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किन्हीं तीन तालों का पूर्ण परिचय देते हुए उनके ठेकों को दुगुन, तिगुन, चौगुन व आड लयकारी सहित लिपिबद्ध कीजिए।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**